डॉ० धर्मवीर भारती और उनकी

कनुप्रिया

डॉ० धर्मवीर भारती
और उनकी
कनुप्रिया

डॉ० कृष्णदेव झारी
एम० ए०, पी-एच० डी०
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
पी० जी० डी० ए० वी० कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रकाशक :
रीगल बुक डिपो
नई सड़क, दिल्ली-६

संस्करण : सन् १९७२
मूल्य : ४.००

मुद्रक:
विजय कम्पोजिंग एजेंसी
द्वारा अनुपम प्रिंटर्स, दिल्ली-६

दो शब्द

डॉ० धर्मवीर भारती की काव्य-कृति 'कनुप्रिया' हिन्दी की एक बहुचर्चित रचना गत कई वर्षों से बनी हुई थी, पर उसका समुचित अध्ययन-आलोचन अभी तक नहीं हो पाया था। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक लघु प्रयास है।

'कनुप्रिया' छायावादोत्तर काल की रचना अवश्य है, पर शैली, प्रवृत्ति और भाव-बोध सभी दृष्टि से वह छायावादी शैली की ही आधुनिक रचना सिद्ध होती है। राधा-कृष्ण के परम्परागत प्रणय, प्रसंग, पौराणिक मिथकों, कवि-समयों तथा प्रतीकों को भारती ने नया रूप प्रदान किया है। उसकी रोमानी गद्यगीत-शैली, मुक्त छन्द-प्रवाह, भावप्रवणता, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, लाक्षणिक प्रयोग, मूर्त-अमूर्त विधान आदि विशेषताएं उसे छायावादी काव्य-कृति ही सिद्ध करती हैं। रचना को नया युगबोधक रूप प्रदान करने में अन्तिम 'इतिहास' और 'समापन' खण्ड विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें संदेह नहीं कि विषय-वस्तु, भाव-बोध और शैली-शिल्प की दृष्टि से यह अन्तिम अंश कवि की मौलिक कल्पनाशक्ति का परिचायक है, पर इसमें भारती ने परम्परा, इतिहास और संस्कृति के विपरीत कृष्ण के चरित्र को कुछ अधिक दूषित और एकांगी दर्शा दिया है। कृष्ण के इतिहास निर्माण-कार्य को केवल जन-संहारक युद्ध मान लिया गया है। यही इस रचना के भाव-बोध की दुर्बलता है। यद्यपि परम्परा से हटकर भारती ने एक ओर तो यहाँ राधा के चरित्र को ऊंचा उठाया है और उसकी नारी-उपेक्षा का भाव दूर करने का प्रयत्न किया है, दूसरी ओर हिंसक युद्धों के प्रति वितृष्णा उत्पन्न कर आधुनिक भाव-बोध जगाया है: राधा केवल परम्परागत कृष्ण-विलासिनी या कृष्ण-वियोगिनी ही नहीं बनी रहती, अपितु वह अब जीवन-पगडण्डी के कठिनतम मोड पर इसलिये प्रतिक्षारत खड़ी है कि इस बार वह इतिहास-निर्माण में कनु का पूरा साथ देगी, पर कृष्ण के युग-निर्माणकारी उदात्त कृत्यों की सर्वथा अवहेलना करके, उसे इतिहास-निर्माण या युग-निर्माण में सर्वथा असफल घोषित करना और भारत युद्ध को एक नरसंहारक अवांछित आयोजना मानना इतिहास को विकृत करना है। इस थोड़ी-सी विसंगति के सिवा यह रचना अत्यन्त मार्मिक और सफल है।

अस्तु, 'कनुप्रिया' का यह सर्वांगीन अध्ययन पाठकों को न्यायसंगत और तर्कपूर्ण प्रतीत होगा, ऐसी आशा है। फिर भी विचार-भेद का स्वागत होगा।

भूलभुलैयाँ रोड, महरौली, नई दिल्ली-३० —कृष्णदेव झारी

विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ

आलोचना भाग

व्याख्या-भाग

१ : धर्मवीर भारती :
कवि-व्यक्तित्व और कृतित्व

हिन्दी के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'धर्मयुग' के सम्पादक डा० धर्मवीर भारती ने गत बीस वर्षों में हिन्दी जगत् में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। लगभग सन् १९५० से उनकी रचनाएं प्रकाश में आने लगीं थीं। पैंतालीस वर्ष की अवस्था (जन्म २५ दिसम्बर, १९२६ ई०) के इस युवा साहित्यकार ने उपन्यास, कविता, नाटक आदि कई साहित्य-विधाओं में शैली-शिल्प और चिंतन की नवीन-नवीन पद्धतियों का उन्मेष किया है। आप न केवल एक सफल सम्पादक हैं, अपितु हिन्दी के एक श्रेष्ठ कथाकार होने के साथ-साथ उच्च कोटि के कवि भी हैं। कथाकार के रूप में आपकी प्रतिभा का अधिक प्रखर रूप प्रकट हुआ है या कवि-रूप में—यह विवाद का विषय हो सकता है, पर इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि भारती का कवि-रूप उनके कथाकार (उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार) पर भी छाया रहता है।

जयशंकर प्रसाद की तरह भारती की रोमानी प्रवृत्ति (यद्यपि भिन्न रूप में) उनकी सब रचनाओं में पाई जाती है। सौन्दर्य, यौवन और कला का प्रेमी यह युवा साहित्यकार मूलतः भावुक और रोमान्टिक कलाकार है। इसीसे सब क्षेत्रों में उसने स्वच्छन्द गति दिखाई है।

अपने विद्यार्थी-जीवन-काल में ही श्री धर्मवीर भारती ने साहित्य-सृजन की प्रतिभा प्रकट कर दी थी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकीय परीक्षा पास करने के बाद भारती ने प्रथम श्रेणी में हिन्दी एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। भारती को इलाहाबाद विश्वविद्यालय का सर्वाधिक अध्ययनशील छात्र घोषित किया गया और इस उपलक्ष्य में उन्हें चिंतामणि घोष स्वर्णपदक प्रदान किया गया। भारती की इस अध्ययनशील प्रवृत्ति ने उन्हें भावुक के साथ-साथ मननशील और चिंतनशील बनाया, यही कारण है कि उनकी समस्त

रचनाएं भावना के साथ-साथ जीवन-बोध और युग-बोध की परिचायक हैं। भारती ने एम० ए० के पश्चात् 'सिद्ध साहित्य' पर डा० धीरेन्द्र वर्मा के निरीक्षण में शोधकार्य कर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ही प्राध्यापक लग गये थे। पर उनका सर्जक अपने को अध्यापकीय क्षेत्र में ही सीमित नहीं रख सका। फलतः सन् १९५९ में वे बम्बई से प्रकाशित होने वाले हिन्दी के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'धर्मयुग' के प्रधान सम्पादक नियुक्त हो गए। इस पत्रिका के सम्पादक बनने से आप टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन तथा भारतीय ज्ञानपीठ-जैसी प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थाओं से सम्बद्ध हो गए। अब आपकी प्रायः सभी रचनाएं भारतीय ज्ञान-पीठ से प्रकाशित होने लगीं।

यद्यपि भारती अपने दो उपन्यासों—'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवां घोड़ा' के कारण हिन्दी में पहले ही कथाकार के रूप में प्रसिद्धि पा चुके थे, पर 'धर्मयुग' का सम्पादक बनने के बाद तो आपको अपनी प्रतिभा प्रकट करने का विशेष अवसर मिल गया। लगभग इसी समय आपकी काव्य-कृति 'कनुप्रिया' प्रकाश में आई जिससे कवि के रूप में भी आपकी विशेष ख्याति हुई। 'कनुप्रिया' से पूर्व भारती जी की 'सात गीत वर्ष' और 'ठण्डा लोहा' (१९५२ ई०) दो काव्य-संग्रह, और जनवरी १९५६ में 'अंधायुग' नामक काव्य-नाटिका प्रकाशित हो चुके थे। पर कवि के रूप में उनकी परम प्रतिष्ठा 'कनुप्रिया' से हुई। 'अंधायुग' काव्य-नाटिका का भी खूब प्रचार और रेडियो पर प्रसार हुआ। सन् १९५४ में श्री धर्मवीर भारती के पांच एकांकी नाटकों का संग्रह 'नदी प्यासी थी' नाम से प्रकाशित हुआ। 'मुर्दों का गांव', 'चांद और टूटे हुए लोग' तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान' नामक उनके तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक आस्कर वाइल्ड की कहानियों का हिन्दी अनुवाद उन्होंने 'आस्कर वाइल्ड की कहानियां' नामक संग्रह में किया है। 'देशान्तर' नामक संग्रह में भारती ने इक्कीस पाश्चात्य देशों की १६१ कविताओं का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। 'सिद्ध साहित्य' (शोध प्रबंध) के अतिरिक्त 'प्रगति-वाद : एक समीक्षा' और 'मानव-मूल्य और साहित्य' उनकी साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी रचनाएं हैं। 'ठेले पर हिमालय', 'कहनी-अनकहनी' और 'पश्यन्ती' नामक संग्रहों में उनके ललित और वैयक्तिक निबंध तथा गद्य-रचनाएँ संकलित

हैं। १९६८ में भारती का एक और काव्य-नाटक 'सृष्टि का आखिरी आदमी' प्रकाशित हुआ।

इस प्रकार श्री धर्मवीर भारती ने उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, काव्य-समालोचना, निबंध, सम्पादन, अनुवाद आदि विविध साहित्य-विधाओं में अपनी सफल गति का परिचय दिया है। इन सब साहित्य-रूपों में उनका कौन रूप सर्वोत्कृष्ट है—किस क्षेत्र में उनकी प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ रूप प्रकट हुआ है, इस प्रश्न का यद्यपि दो टूक उत्तर देना कठिन है, तथापि गहराई से देखने पर यही विदित होता है कि भारती की कवि-प्रतिभा ही विकास की सर्वोच्च मंजिल पर पहुंची है।

भारती ने युवा गीतकार के रूप में अपनी कविता-रचना आरंभ की। १९४६ से सन् १९५२ के बीच रची गई कविताओं में से चुनी हुई ३८ कविताओं को श्री धर्मवीर भारती ने 'ठण्डा लोहा' नामक संग्रह में प्रकाशित कराया। इस आरंभिक काव्य-रचना से ही कवि की रोमांटिक प्रवृत्ति का परिचय मिल जाता है। इस रचना में इस युवा गीतकार ने अधिकांश प्रणय-गीत गाए हैं। सन् १९५२ में प्रकाशित इस संग्रह की भूमिका में भारती ने कहा है: "मैं कविताएं बहुत कम लिख पाता हूं और अक्सर कुछ लिख लेने के बाद मौन का एक लम्बा व्यवधान बीच में आ जाता है;……।

"इस संग्रह में दी गई कविताएं मेरे पिछले छः वर्षों की रचनाओं में से चुनी गई हैं और चूंकि यह समय अधिक मानसिक उथल-पुथल का रहा, अतः इन कविताओं में स्वर, भावभूमि, शिल्प और टोन की काफी विविधता मिलेगी। एकसूत्रता केवल इतनी है कि सभी मेरी कविताएं हैं, मेरे विकास और परिपक्वता के साथ उनके स्वर बदलते गए हैं……यद्यपि आज मेरा मन उस भूमि पर है जो 'कवि और अनजान पगध्वनियां' या 'कलाकार से' या 'फूल, मोमबत्तियां, सपने' की भावभूमि हैं, पर जिन गलियों से मैं गुजर चुका हूं उनका महत्त्व कलई कम नहीं होता क्योंकि उन्हीं से गुजर कर मैं यहां तक पहुंचा हूं। कैशोरावस्था के प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन, आत्म-समर्पणमयी वैष्णव भावना और उसके माध्यम से अपने मन के अहम् का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक सचाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भाव-भूमि की खोज—मेरी इस छंद-यात्रा के यही प्रमुख मोड़ रहे हैं।

"सबसे पिछला मोड़ 'कवि और अनजान पगध्वनियां' में स्पष्ट नज़र आया है। इस मोड़ का प्रारंभ 'ठंडा लोहा' से हुआ था।······

"मैं अपना पथ बना रहा हूं। जिन्दगी से अलग रहकर नहीं, जिन्दगी के संघर्षों को झेलता हुआ, उसके दुख-दर्द में एक गंभीर अर्थ ढूंढता हुआ और उस अर्थ के सहारे अपने को जनव्यापी सच्चाई के प्रति अर्पित करने का प्रयास करता हुआ। कवि का जीवन, कवि की वाणी, अर्पित जीवन और अर्पित वाणी होते हैं। आशीर्वाद चाहता हूं कि धीरे-धीरे मैं और मेरी कलम एक निर्मल और सशक्त माध्यम बन सकें जिससे विराट् जीवन, उसका सुख-दुःख, उसकी प्रगति और उसका अर्थ व्यक्त हो सके।"

भूमिका के वक्तव्य से यह लम्बा उद्धरण इसीलिए प्रस्तुत किया गया है कि कवि की प्रवृत्ति और उसके संकल्प को समझा जा सके। इसमें संदेह नहीं कि भारती ने व्यक्तिगत प्रणयानुभूति, कैशोरावस्था की रूपासक्ति और आकुल निराशा का इस संग्रह के अधिकांश गीतों में चित्रण किया है। पहली कविता 'ठंडा लोहा' में ठंडा लोहा जगत् की हृदयहीनता का प्रतीक है। कवि का निराशा और दुःख से भरा स्वर इस गीत में फूट पड़ा है :

ओ मेरी आत्मा की संगिनि !
तुम्हें समर्पित मेरी सांस-सांस थी लेकिन
मेरी सांसों में यम के तीखे नेजे-सा
कौन अड़ा है ?
ठंडा लोहा !
मेरे और तुम्हारे सारे भोले निश्छल विश्वासों को
आज कुचलने कौन खड़ा है ?
ठंडा लोहा !
फूलों से, सपनों से, आँसू और प्यार से
कौन बड़ा है ?
ठंडा लोहा !

—ठंडा लोहा

कवि ने कभी अपनी प्रेयसी के 'शरद के चांद-से उजले धुले-से पांव', लहर पर नाचते ताज़े कमल-मुख, दो बड़े मासूम बादल (आंखें) अपनी गोद में सहलाये और चूमे थे और उस प्यार की मादकता में कवि डूब गया था :

अर्चना की धूप-सी तुम गोद में लहरा गयीं,
ज्यों झरे केसर तितलियों के परों की मार से,
सोनजूही की पंखुरियों से गुंथे, ये दो मदन के बान
मेरी गोद में !
हो गए बेहोश दो नाजुक, मृदुल तूफान,
मेरी गोद में !

—तुम्हारे चरण

और यह रूप कवि के लिए केवल वासना या भोग का प्रतीक नहीं था, अपितु कवि भारती ने उसकी पवित्रता और उज्ज्वलता का भी अनुभव किया है। इस पूजा-से रूप को कवि अनन्त जीवनदायी समझता है :

पूजा-सा तुम्हारा रूप
जी सकूंगा सौ जनम अंधियारियों में, यदि मुझे
मिलती रहे
काले तमस की छांह में
ज्योति की यह एक अति पावन घड़ी !

—प्रार्थना की कड़ी

इन प्रणय-गीतों में कवि भारती ने अनूठी रोमानी उपमान-योजना की है। प्रेयसी के रूठे, उदास चेहरे की सौन्दर्य-छवि पर कवि अनेक बार मुग्ध हुआ है :

तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास !
ज्यों किसी गुलाबी दुनिया में सूने खण्डहर के आसपास
मदभरी चांदनी जगती हो !

—उदास तुम

पर कवि बहुत दिन अपनी किशोरी प्रेयसी के रूप का रसपान नहीं कर सका, अपनी 'मुग्धा' पर मुग्ध नहीं रह सका ! एक दिन उसके देखते-देखते उसकी प्रिया का डोला 'कोई और' ले जाता है। कवि विवश-भाव से मन मसोस कर रह जाता है और अपनी प्रेयसी को भी 'लोक की मरजाद' का ही पाठ सिखाता है :

भोर फूटे, भाभियाँ जब गोदभर आशीष दे दें
ले विदा अमराइयों से
चल पड़े डोला हुमच कर
है कसम तुमको, तुम्हारे कोंपलों-से नैन में आँसू न आयें
राह में पाकड़ तले
सुनसान पाकर
प्रीत ही सब-कुछ नहीं है, लोक की मरजाद है सबसे बड़ी
—डोले का गीत

जिस प्रेयसी के फिरोजी होठों पर उसने अपनी 'जिन्दगी बरबाद' कर डाली थी, जिसके 'वक्ष की जादूभरी मदहोश गरमाई' में कवि डूब गया था, जिसकी चितवनों पर वह किसी भी मोल अपने को लुटाने के लिए प्रस्तुत था, जिसे उसने 'आदिम गुनाहों का अजब-सा इन्द्रधनुषी स्वाद' सिखाया, उसका प्रणय कवि के लिए त्याग, मुक्ति या साधना से भी बढ़कर हो गया था :

बड़ा मासूम होता है गुनाहों का समर्पण भी
हमेशा आदमी
मजबूर होकर लौट आता है
जहाँ हर मुक्ति के, हर त्याग के, हर साधना के बाद

इस प्रणय को कवि किसी प्रकार हेय या पाप मानने को तैयार नहीं है :

अगर मैंने किसी के होठ के पाटल कभी चूमे
अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चूमे
महज इससे किसी का प्यार मुझको पाप कैसे हो ?
महज इससे किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो ?
—गुनाह का गीत

पर अंततः कवि को निराशा और विफलता ही मिली। उसका प्रणय किसी अन्य ने लूट लिया, उसकी प्रेयसी विवश-भाव से उससे बिछुड़ गई। कवि "मुरदा सपनों को ही सीने से चिपकाये" रहा।

भारती जी ने 'ठंडा लोहा' की भूमिका में कहा है कि अब उसने वह गुजरी हुई राह छोड़ दी है और वह जीवन की विषमताओं का गायक बन गया है। इसमें संदेह नहीं कि कुछ कविताओं में कवि ने 'अनजान पगध्वनियाँ' सुनी हैं और नई चेतना का दावा किया है :

ठहरो ! ठहरो ! ठहरो ! ठहरो ! हम आते हैं
हम नयी चेतना के बढ़ते अविराम चरण !
हम मिट्टी की अपराजित गतिमय सन्तानें
हम अभिशापों से मुक्त करेंगे कवि का मन !

—कवि और अनजान पगध्वनियां

पर सच तो यह है कि भारती सिवाय अपनी दो-चार कविताओं के सर्वत्र रोमांस के कवि प्रतीत होते हैं। 'सात गीत वर्ष' संग्रह ही नहीं, मैं यह बात 'कनुप्रिया' को भी ध्यान में रखकर कह रहा हूं। इसमें संदेह नहीं कि 'फूल, मोम बत्तियां, सपने'—जैसी दो-चार कविताओं में कवि ने विराट् जीवन के सुख-दुःख का गीत गाना चाहा है, पर उसमें कवि भारती को वैसी सफलता नहीं मिली है, जैसी प्रणय-गीत और रोमानी कविताएं रचने में मिली है। 'कनुप्रिया' में कवि अवश्य ही 'कैशोरावस्था के प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन, आत्मसमर्पणमयी वैष्णव भावना' तक पहुंचा दिखाई देता है, पर 'जनवादी भावभूमि' या विराट् जीवन के सुख-दुःख और प्रगति को अंकित करने का प्रामाणिक प्रयास उसने बहुत कम किया है। 'अंधायुग' और 'कनुप्रिया' में अवश्य भारती ने युद्ध की विभीषिका के प्रति वितृष्णा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है, पर वह बहुत ही सीमित युग-संदर्भ को छूता है। उस चित्रण में भी वास्तविकता कम और कल्पना की रंगीनी अधिक है। इसीसे उसमें युग-बोध की पूर्ण क्षमता नहीं। 'कनुप्रिया' भारती की सर्वोत्कृष्ट रचना है। शैली-शिल्प और भावानुभूति की गहराई में वह बेजोड़ है। पर उसको भी दृष्टि में रखते हुए कुल मिलाकर यही कहना पड़ता है कि कवि भारती मूलतः प्रेम, सौन्दर्य और यौवन के रोमांटिक कवि हैं, यद्यपि इस रोमांस को उसने एक 'पावन आत्मसमर्पणमयी वैष्णव भावना' में परिवर्तित करने का सफल प्रयास किया है। जनवादी भावभूमि और युग-समस्याओं को वह अभी पूरे मनोयोग से नहीं अपना सका है। आशा रखनी चाहिए कि भविष्य में भारती जी अपने संकल्प पूरे करेंगे और उनकी लेखनी विराट् जीवन और उसके सुख-दुःखों की अभिव्यक्ति का और सशक्त माध्यम बनेगी।

२ : कनुप्रिया : विषय-वस्तुगत परिचय

'कनुप्रिया' एक कथात्मक खण्डकाव्य तो नहीं कहा जा सकता और इसी-लिए इसमें भारती ने राधा-कृष्ण-संबंधी किसी कथा को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत नहीं किया है, पर राधा-कृष्ण के प्रणय की चिरपुरातन चिरनवीन कथा के कुछ संदर्भ इसमें अनायास ही ग्रथित हो गए हैं। 'कनुप्रिया' एक भाव-प्रधान काव्य है जिसमें कनुप्रिया राधा की भावाकुल स्थितियों का चित्रण किया गया है। समस्त रचना (केवल ८४ पृष्ठ) को पांच खण्डों में प्रस्तुत किया गया है : (१) पूर्वराग, (२) मंजरी-परिणय, (३) सृष्टि-संकल्प, (४) इतिहास और (५) समापन। पुस्तक में इन पांच खण्डों की योजना होते हुए भी रचनाकार ने कनुप्रिया राधा की मनःस्थिति के क्रमिक विकास की दृष्टि से इसके तीन चरण माने हैं। भूमिका में लिखा गया है : "लेकिन वह क्या करे जिसने अपने सहज मन से जीवन जिया है, तन्मयता के क्षणों में डूबकर सार्थकता पायी है, और जो अब उद्घोषित महानताओं से अभिभूत और आतंकित नहीं होता बल्कि आग्रह करता है कि वह उसी सहज की कसौटी पर समस्त को कसेगा।

ऐसा ही आग्रह है कनुप्रिया का !

"लेकिन उसका यह प्रश्न और आग्रह उसकी आरंभिक कैशोर्य-सुलभ मनः-स्थितियों से ही उपजकर धीरे-धीरे विकसित होता गया है। इस कृति का काव्य-बोध भी उन विकास-स्थितियों को उनकी ताज़गी में ज्यों-का-त्यों रखने का प्रयास करता चलता है। पूर्वराग और मंजरी-परिणय उस विकास का प्रथम चरण, सृष्टि-संकल्प द्वितीय चरण तथा महाभारत काल से जीवन के अन्त तक शासक, कूटनीतिज्ञ, व्याख्याकार कृष्ण के इतिहास-निर्माण को कनु-प्रिया की दृष्टि से देखने वाले खण्ड—इतिहास तथा समापन इस विकास का तृतीय चरण चित्रित करते हैं।"

इस तरह विषय-वस्तु की दृष्टि से पांच खण्डों की अपेक्षा कनुप्रिया राधा की मनःस्थितियों का विकास तीन चरणों में ही हुआ है। वस्तुतः ये तीन चरण भी मूलतः दो पहलुओं के ही द्योतक हैं। एक है राधा के पूर्वराग, मंजरी-परिणय और सृष्टि-संकल्प के रूप में राधा के संयोग शृंगार-संबंधी पक्ष और दूसरा है 'इतिहास' और 'समापन' के अन्तर्गत राधा के विरह और विरह-अन्तर्गत कृष्ण के प्रति उसकी भावानुभूतियों का वियोग-शृंगार-सम्बन्धी पक्ष।

'पूर्वराग' में राधा के पूर्वराग का सर्वथा परंपरागत वर्णन न करके कवि ने कुछ नया ढंग भी अपनाया है। 'पूर्वराग-'अन्तर्गत पांच गीत हैं। पहले गीत में नवयौवना की पदचाप से अशोक-वृक्ष के खिल उठने के परंपरागत कवि-समय को नया रंग देते हुए राधा के नवयौवन और सौन्दर्य का संकेत किया गया है। दूसरे गीत में राधा अपनी लज्जाशीलता को व्यक्त करती हुई अनुभव करती है कि उसका प्रिय कनु उसके जिस्म के पोर-पोर में बसा हुआ है, जिस्म के एक-एक तार से झंकार उठा है। फिर 'अपने को अपने से छिपाने के लिए' कोई आवरण कैसे रह जाता! तीसरा गीत भी राधा के पूर्वराग का एक संदर्भ प्रकट करता है। राधा आरंभ में कृष्ण को ध्यानमग्न अवस्था में कदम्ब के पेड़ तले खड़ा देखकर उसे कोई वनदेवता समझ लेती है और कर-बद्ध प्रणाम कर सिर झुकाती है। पर कृष्ण उसी तरह अडिग और निर्लिप्त-से खड़े रहते हैं। वह छलिया तो राधा के समस्त का लोभी था, भला उस प्रणाम-मात्र को क्यों स्वीकारता? राधा भोली उसे वीतरागी समझ बैठी थी। उसने तो राधा के 'एक-एक अंग की एक-एक गति को पूरी तरह बांध लिया।'

'पूर्वराग' के चौथे गीत में राधा अपने कनु के प्रति कहती है कि मैं जो यमुना-जल में निर्वसना घुसी हुई घण्टों निहारती हूं, तो अपना प्रतिबिम्ब जल में नहीं देखती, अपितु मुझे अनुभव होता है कि "मानो यह यमुना की सांवली गहराई नहीं है, यह तुम हो जो सारे आवरण दूरकर मुझे चारों ओर से कण-कण रोम-रोम अपने श्यामल प्रगाढ़ आलिंगन में पोर-पोर कसे हुए हो।" पाँचवें गीत में कृष्ण की रासलीला का संदर्भ है। राधा अपने पश्चात्ताप को व्यक्त करती है कि "उस रास की रात तुम्हारे पास से लौट क्यों आयी? जो चरण तुम्हारे वेणुवादन की लय पर तुम्हारे नील जलज तन की परिक्रमा देकर नाचते रहे वे फिर घर की ओर उठ कैसे पाये? मैं उस दिन लौटी क्यों—कण-कण अपने को तुम्हें देकर रीत क्यों नहीं गयी?"

'मंजरी-परिणय' का दूसरा खण्ड राधा के चरम साक्षात्कार के क्षणों—परम मिलन की अनुभूतियों से सम्बन्धित है। इस प्रकृति-बाला का कृष्ण के साथ मंजरी-परिणय होता है। 'मंजरी-परिणय' का पहला गीत 'आम्रबौर का गीत' है। इसमें कृष्ण की जन्म-जन्मान्तर की रहस्यमयी लीला की एकांत-संगिनी राधा अपने प्रिय कनु को बताती है कि भय, संशय, गोपन, उदासी आदि भाव मुझे चरम साक्षात्कार—"चरम सुख के क्षणों में भी अभिभूत कर लेते हैं और मैं कितना चाहकर भी तुम्हारे पास ठीक उसी समय नहीं आ पाती जब आम्र-मंजरियों के नीचे अपनी बांसुरी में मेरा नाम भरकर तुम मुझे बुलाते हो।" राधा अपनी विवशता जताती है। उसका प्रिय कनु उसकी प्रतीक्षा में सांझ को देर तक बाँसुरी में उसे टेरता रहता है, पर राधा उस दिन नहीं पहुंच पाती। राधा की लज्जा, संकोच, मोह, ब्रीड़ा, भय, संशय आदि संचारी भाव-वृत्तियों का बहुत सुन्दर प्रकाशन इस गीत में हुआ है।

'मंजरी-परिणय' का दूसरा गीत 'आम्रबौर का अर्थ' शीर्षक है। कृष्ण अपनी प्रिया की क्वांरी उजली मांग को आम्रबौर से भरना चाहते हैं। राधा उसका ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझ पाती। वह अपने कनुप्रिय से अनुरोध करती है कि वह उसकी नासमझी पर नाराज़ न हो। राधा न जाने कृष्ण के कितने संकेतों को समझती आई है: "कितनी बार कृष्ण ने जब अर्द्धोन्मीलित कमल भेजा तो राधा तुरंत समझ गई कि उसके प्रिय ने उसे संझा बिरियां बुलाया है।" इसी प्रकार कृष्ण के कितने ही संकेतों को राधा समझती रही है। यदि इस बार आम्रबौर का संकेत नहीं समझ पाई तो क्या! राधा का अंग-अंग-सौन्दर्य कृष्ण के लिए साधन मात्र है राधा को पाने का और चरम-साक्षात्कार के क्षणों में राधा को अनुभव होता है, जैसे वह जिस्म के बोझ से मुक्त है—एक सुगंध-मात्र है। कृष्ण राधा की क्वांरी उजली मांग को आम्रबौर से भर देते हैं ताकि भरकर भी वह सदा ताज़ी, क्वांरी और उजली बनी रहे। राधा कहती है कि मैं तुम्हारे इस अभिप्राय को ठीक-ठीक नहीं समझ पायी। भला सारे संसार से पृथक् पद्धति का जो कृष्ण का प्यार है, उसकी भाषा समझ पाना क्या इतना सरल है? फिर राधा तो वही कृष्ण की बावरी है जो अपनी तन्मयता में डूबी 'श्याम ले लो! श्याम ले लो!' पुकरती हुई हाट-बाट में, नगर-डगर में अपनी हंसी कराती घूमती है!"

'मंजरी-परिणय' के तीसरे गीत में राधा अपने प्रिय कनु से प्रश्न करती है : 'तुम मेरे कौन हो।' बार-बार राधा के मन ने आग्रह से, विस्मय से, तन्मयता से पूछा है—'यह कनु तेरा कौन है ? बूझ तो ?' बार-बार उसकी सखियों ने व्यंग्य से, कटाक्ष से, कुटिल संकेत से यही प्रश्न किया है। पर राधा किसी को क्या बताए, वह स्वयं आज तक यह नहीं जान पाई। बार-बार गुरुजनों ने कठोरता से यही प्रश्न किया है। राधा ने कृष्ण को अनेक प्रसंगों पर अनेक नातों से जुड़ा पाया है। कृष्ण उसे कभी प्रणयी, कभी भोला शिशु, कभी रक्षक, कभी सखा प्रतीत हुआ है तो कभी उसने स्वयं को परम पुरुष कृष्ण की शक्ति और योगमाया अनुभव किया है। कृष्ण से राधा का कोई एक नाता हो तो वह बतलाये भी। कृष्ण तो उसका सखा, बंधु, आराध्य, शिशु, दिव्य पुरुष, सहचर और सर्वस्व है। कृष्ण तो उसका सांवरा समुद्र है जो उसके बार-बार नये रूपों में आने पर भी उसे अपने में विलीन कर लेता है।

'सृष्टि-संकल्प' शीर्षक तीसरे खण्ड में राधा-कृष्ण के प्रेम की दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। राधा कृष्ण की चिरलीला-संगिनी ही नहीं, सृजन-संगिनी भी है। राधा अपने प्रिय कनु के प्रति कहती है कि यदि इस दृश्यमान सृष्टि का अंतिम अर्थ केवल तुम्हारी इच्छा है, यदि इस सारे सृजन, विनाश और प्रवाह का अर्थ केवल तुम्हारा संकल्प है, तो तुम्हारी इच्छा और संकल्प का अर्थ मैं हूं ! एक से अनेक होने की तुम्हारी इच्छा अर्थात् सृजन का मूल हेतु है मेरे साथ तुम्हारी प्रणय-क्रीड़ा। उद्दाम क्रीड़ा की इच्छा और प्रगाढ़ वासनामय प्यार ही सृष्टि-सृजन और समस्त जीवन-प्रवाह का द्योतक है और यह समस्त सृष्टि रह नहीं जाती, जब मैं प्रगाढ़ क्रीड़ा और गहरे प्यार के बाद तुम्हारी चंदन-बाँहों में अचेत सो जाती हूं। समस्त सृष्टि तब लय हो जाती है। पुनः फिर अपने सूनेपन से घबरा कर तुम मुझे जगाते हो और मैं फिर जागती हूं संकल्प की तरह, इच्छा की तरह और तब पुनः सृजन होता है, सृष्टि अस्तित्व में आ जाती है। और गहरे प्यार और उद्दाम क्रीड़ा के बाद मैं जब फिर सो जाती हूं तो सृष्टि पुनः विलीन हो जाती है। तुम मुझे फिर जगाते हो ! और इस प्रकार वह सृजन, प्रवाह और विनाश का क्रम चलता रहता है। मैं तुम्हारे इस समस्त आयोजन में तुम्हारी लीला-सहचरी और

सृजन-संगिनी रहती हूं।' 'सृष्टि-संकल्प' के पहले गीत 'सृजन-संगिनी' का यही भाव-सार है।

दूसरे गद्यगीत 'आदिम भय' में राधा अपने लीलातन या छायातन के भय का उल्लेख करती है। वह अपने प्रिय कनु से प्रश्न करती है कि जब यह समस्त सृष्टि मेरा ही लीलातन है, तुम्हारे आस्वादन के लिए, तो प्यारे कनु, यह तो बताओ 'कि कभी-कभी 'मुझे' भय क्यों लगता है ?' मैं डरती किससे हूँ ? 'उद्दाम क्रीड़ा की वेलामें भय का यह जाल किसने फेंका है ?' 'यह जो भयभीत है—वह छायातन किसका है ? किसलिए है—मेरे मित्र ?' इस गीत द्वारा भारती जी ने राधा के लौकिक प्रणय या लौकिक लीलामय प्रणय और उद्दाम क्रीड़ा का संकेत दिया है।

तीसरा गद्यगीत 'केलिसखी' शीर्षक है। इसमें राधा बताती है, कि जो आदिम भय मुझे प्रिय कनु से दूर ले गया था, वही दुगने वेग से लौटा लाया है। कनु की यह केलिसखी भला अपने सखा से दूर कैसे रह सकती थी ! आज उसे सब ओर से अभिसार के संकेत मिल रहे हैं। वह परम साक्षात्कार और उद्दाम क्रीड़ा के लिए तैयार है। वह अपने कनु को कसकर जकड़ लेती है। उसका 'कसाव निर्मम है, और अंधा, और उन्माद भरा।' राधा केलिक्रीड़ा में डूब जाती है—शैथिल्य की बांहों में डूब जाती है, और साथ ही यह सृष्टि भी लीन हो जाती है। रह जाती है केवल राधा—कनु की अंतरंग केलिसखी अपने प्रिय सखा कनु के साथ।

यहां तक राधा के पूर्वराग और संयोग का प्रसंग रहा है। इसके बाद 'इतिहास' और 'समापन' में विप्रलब्धा राधा की भावानुभूतियों का प्रकाशन हुआ है। 'इतिहास' खण्ड के अन्तर्गत सात गद्यगीत हैं। पहला है 'विप्रलब्धा' जिसमें राधा अपने विरह-दग्ध हृदय और तन का मार्मिक वर्णन करती है। अनेक सुन्दर उपमाओं और उपमानों की योजना से इस गीत में राधा की दुखद स्थिति का बिम्बात्मक चित्रण किया गया है। राधा का विरह-दग्ध जिस्म 'बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चांद, रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण-सा' महत्वहीन हो गया है। कृष्ण के आश्लेष (संयोग) में जो तन कल तक 'जादू था, सूरज था', वही अब कृष्ण के वियोग में 'जूड़े से गिरे हुए बेले-सा टूटा है, म्लान है, दुगना सुनसान है, बीते हुए उत्सव-सा, उठे हुए मेले-सा। कृष्ण ब्रज छोड़कर, राधा को छोड़कर इतिहास-निर्माण के लिए चला जाता

है। राधा अकेली पड़ जाती है—सर्वथा उपेक्षिता। अब उसका यह म्लान तन है और संयोग-काल की यादें हैं—खाली दर्पण में धुंधले प्रतिबिम्बों की तरह बार-बार लहराती और झलकती हुई। राधा कहती है : 'जिन रूखी अलकों में मैंने समय की गति बांधी थी—हाय उन्हीं काले नागपाशों से दिन-प्रतिदिन, क्षण-प्रतिक्षण बार-बार डंसी हुई,' 'अब भी जो बीत गया, उसीमें बसी हुई, अब भी उन बाहों के छलावे में कसी हुई' हूं।

विप्रलब्धा के इस दुःख के साथ दूसरे गद्यगीत 'सेतु: मैं' में राधा अपने प्रिय कनु के प्रति खीझ और उपालंभ से भरकर प्रश्न करती है : 'क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी तुम्हारे लिए लीला-भूमि और युद्ध-क्षेत्र के अलंघ्य अन्तराल में ?' राधा के ही शरीर पर पांव रखकर—उसके प्यार को कुचलकर, राधा की बांहों से छीनकर इतिहास उसके प्रिय कनु को ले गया ! यह कैसी विडम्बना है !

तीसरे गद्यगीत 'उसी आम के नीचे' में राधा पूर्व-स्मृतियों में डूबी हुई कहती है कि मैं नहीं जानती कि कनु के साथ मेरा प्यार एक सपना था या वास्तविकता, चरम साक्षात्कार के वे क्षण कोरी भावुकता थे, निरर्थक थे या सार्थक, पर इतना जरूर है कि जिस आम की डाली के नीचे खड़े होकर कनु उसे बुलाया करता था, वहां आकर राधा को अब भी शांति मिलती है, दुःख की इन घड़ियों में भी वहां कुछ सुख मिलता है। राधा पूर्व-स्मृतियों में डूब जाती है। जहां कृष्ण ने उसे अमित प्यार दिया था, वहां बैठकर वह कंकड़, पत्ते, तिनके, टुकड़े चुनती रहती है और दुःख से भरकर प्रिय कनु से प्रश्न करती है, 'तुम्हारे महान् बनने में क्या मेरा कुछ टूटकर बिखर गया है कनु ?'

चौथे गीत 'अमंगल छाया' में व्यंग्य उभर कर आया है। अमंगल छाया राधा से कहती है कि जिस राह से तू घाट पर कृष्ण से मिलने जाती थी और लौटती थी, आज उस राह से हट जा, क्योंकि आज वहां से कृष्ण की अठारह अक्षौहिणी सेनाएं युद्ध में मार-काट करने जा रही हैं। ये सैनिक क्या जानें तुझे और तेरे प्यार को ! इस आम की डाली को भूल जा ! रही होगी यह कृष्ण को प्रिय, क्योंकि इसीके नीचे खड़े होकर वह बांसुरी में तेरा नाम टेरा करते थे, पर आज यह काट दी जायगी, क्योंकि कृष्ण के सेनापतियों के तेज रथों और उन पर फहराती ध्वजाओं के मार्ग में यह बाधा है ! उदास न हो राधा बावरी, कि युद्ध की इस हलचल में तेरा प्यार नितांत अपरिचित छूट गया है, गर्व कर बावरी, कि तेरे प्रिय की अठारह अक्षौहिणी सेनाएं हैं !

पांचवां गीत 'एक प्रश्न' है। राधा अपने कनु से अब सीधा प्रश्न करती है, 'मान लो कि मेरा प्यार एक सपना था, कोरी भावुकता थी, एक रंगीन कल्पना थी, और तुम्हारा धर्म-अधर्म, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, न्याय-अन्याय वाला यह युद्ध सत्य है, यथार्थ है, पर यह मेरी समझ में नहीं आता कि यह भीषण नर-संहार, युद्ध की कल्पनातीत अमानुषिक घटनाएं, क्या ये सब सार्थक हैं ? प्यारे कनु, मुझे भी अर्जुन की तरह समझा दो, सार्थकता क्या है ? 'मान लो कि मेरी तन्मयता के गहरे क्षण रंगे हुए, अर्थहीन, आकर्षक शब्द थे—तो सार्थक फिर क्या है कनु ?' क्या यह भीषण युद्ध जिसका आयोजन तुमने धर्म के नाम पर किया है, वाकई सार्थक है ?

'इतिहास' खण्ड के छठे गद्यगीत 'शब्द : अर्थहीन' में राधा तर्क करती है कि कनु सार्थकता को कैसे समझायेगा, क्योंकि न्याय, कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व···आदि शब्द जिनके उच्चारण से कृष्ण न्याय, धर्म की अपनी इतिहास-सार्थकता समझायगा, वे राधा के लिए तब तक निरर्थक हैं जब तक कृष्ण स्वयं प्रत्यक्ष अपने मधुर अधरों से इन्हें नहीं निकालते। अर्थात् कृष्ण के संयोग-बिना राधा के लिए किसी शब्द, किसी उपदेश की कोई सार्थकता नहीं है। कृष्ण ने अर्जुन को चाहे कितने ही उपदेश के शब्द सुनाए हों, पर राधा के लिए तो कृष्ण के मुख से केवल एक ही शब्द निकलेगा—राधा केवल एक ही शब्द सुनेगी और वह है—राधन्, राधन्, राधन् ! कनु के उपदेशात्मक शब्द असंख्य हैं, पर उनका अर्थ मात्र एक है—राधा, राधा, केवल राधा ! फिर भला उन उपदेश के शब्दों से कनु राधा को इतिहास कैसे समझायगा ?

सातवें गीत 'समुद्र-स्वप्न' में राधा अपने गहरे सपने को कृष्ण के प्रति व्यक्त करती हुई कहती है कि मैंने आज सपने में उस युद्ध के विक्षुब्ध वातावरण को देखा है। मैंने देखा कि तुम कभी मध्यस्थ बने हुए हो, कभी तटस्थ और कभी युद्धरत ! और अंत में सारी हलचल से थककर खिन्न और उदास हुए तुम मेरे कंधों के सहारे बैठ जाते हो। पुनः तुम बांहें उठा-उठाकर लोगों को कुछ कहते हो, पर तुम्हारी कोई नहीं सुनता। आखिर तुम हारकर मेरे वक्ष के गहराव में सो जाते हो। थोड़ी देर में ही निद्रा से आंखें खोलकर तुम मुख से उपदेश के वचन निकालने लगते हो, पर युग-लहरियां तुम्हें थपकी देकर सुलाती हैं, 'सो जाओ योगिराज···सो जाओ···निद्रा समाधि है।' नींद में तुम्हारे होठ कई बार उपदेश के शब्द निकालते हैं, पर लहरें फिर थपकी देकर

सुला देती हैं। तुम न्याय और धर्म की कसौटी खोजते हो, पर नहीं मिलती। अपने निर्णय के औचित्य पर विचारते हो और आत्मालोचन करते हुए कहते हो : 'कहीं उस दिन मेरे पैताने दुर्योधन होता तो……।' राधा अपना सपना बताती हुई कहती है, 'युद्ध, संघर्ष, न्याय-अन्याय के प्रपंच से तंग आकर तुम असफल इतिहास को जीर्ण वसन की भांति फेंक देते हो ! और इस हताश और दुःखद अवस्था में बहुत दिनों बाद तुम्हें मेरी याद आती है। सब त्याग-कर तुम अब मेरे लिए—मेरे प्यार के लिए, मुझसे केलि-क्रीड़ा के लिए व्याकुल हो उठते हो।'

अंतिम 'समापन' खण्ड में राधा प्रतीक्षारत खड़ी होती है, क्योंकि उसके प्रिय कनु ने अंततः उसे बुलाया है, उसे पुकारा है। राधा को विश्वास था कि चाहे कनु कहीं भटक ले, अंततः उसे राधा के वक्ष में ही शांति मिलेगी। इसी-लिए तो राधा ने अपना भक्त का अस्तित्व बनाये रखा, समुद्र में बूंद की तरह कृष्ण में निर्वाण नहीं चाहा ! अब राधा जन्म-जन्मान्तरों की अनन्त जीवन-पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर आ खड़ी है और कृष्ण की प्रतीक्षा में है कि कहीं इस बार भी इतिहास बनाते समय कृष्ण अकेला न छूट जाय ! वह कनु प्यारे से प्रश्न करती है : 'अपनी केलिसखी को तुमने अपनी बांहों में गूंथा, पर उसे अपने इतिहास में गूंथने से क्यों हिचक गए कनु !' राधा कहती है : 'भला मेरे बिना तुम्हारे इतिहास का कोई अर्थ कैसे निकल पाता ! मेरे बिना सब शब्द अर्थहीन हैं प्यारे ! तुमने मुझे पुकारा और लो मैं सब छोड़-छाड़कर चली आई हूं ताकि कोई यह न कहे कि मैं केवल तुम्हारे साँवरे तन की ही दीवानी बन कर रह गई थी। मैं अब तुम्हारे इतिहास-निर्माण में साथ देने को आई हूं, तुम्हारी प्रतीक्षा में अडिग खड़ी हूँ।''

इस प्रकार 'कनुप्रिया' में कवि धर्मवीर भारती ने राधा के विकसित मनो-भावों का क्रमबद्ध चित्रण किया है। राधा के पूर्वराग, प्रगाढ़ प्रणय, परिणय, उद्दाम संयोग-क्रीड़ा और अलौकिक तन्मयतापूर्ण प्रणय-व्यापार के पश्चात विरह-दग्धा राधा के दुःख-दर्द, उपालंभ, खीझ, मधुर स्मरण, तन्मयता, व्यंग्यपूर्ण तर्क तथा कृष्ण के प्रति अन्य भावों का सुन्दर प्रकाशन हुआ है। रचना का अंत उपेक्षिता राधा के दृढ़ संकल्प के रूप में करके कवि ने न केवल राधा की उपेक्षा का शमन किया है, अपितु समस्त नारी-जाति के स्वाभिमान और गौरव की रक्षा की है।

३ : राधा का स्वरूप-विकास और 'कनुप्रिया' की राधा

राधा : उद्भव और स्वरूप-विकास : कृष्ण का लौकिक, ऐतिहासिक और अलौकिक परमेश्वर अवतारी रूप तो अत्यन्त प्राचीन—ईसा से सैंकड़ों वर्ष पूर्व का है, पर राधा और कृष्ण की अवतारणा ईसा के आरंभ या कुछ बाद में ही हुई। महाभारत, बौद्ध जातकों तथा जैनागमग्रंथों में वर्णित मूल कृष्ण-कथा में राधा का कहीं कोई उल्लेख नहीं है। कृष्ण के रसिक श्रृंगारी रूप का विकास बाद में लगभग ईसा के आरंभ काल में हुआ। साहित्य में प्राकृत की रचना 'गाहा सतसई' में ही सर्वप्रथम राधा का उल्लेख मिलता है। पहली शती ई० की इस रचना में गोपी-कृष्ण की श्रृंगारी रसिकता के कई प्रसंग कई गाथाओं में पाये जाते हैं। एक गाथा में राधा का भी उल्लेख मिलता है :

मुहमारूएण तं कण्ह गोरअं राहिआएं अवणेन्तो।
एताणं बलवीणं अण्णनं वि गोरअं हरसि ॥

—गाहा सतसई १/२९॥

अर्थात् 'हे कृष्ण, तुम मुख-मारुत से राधा के मुख पर लगे गोरज का अपनयन करके इन अन्य बल्लभियों एवं नारियों का गौरव हर रहे हो।"

कुछ अन्य गाथाओं में भी गोपी-कृष्ण-प्रेम का वर्णन पाया जाता है। इन गाथाओं से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि कृष्ण के लौकिक-अलौकिक श्रृंगारी रसिक रूप—गोपी-बल्लभरूप—का पूर्ण प्रचलन लोक-जीवन और श्रृंगार-काव्य में हो चुका था। गोपी-कृष्ण या राधा-कृष्ण के अलौकिक प्रेम की व्यंजना या राधा के अलौकिक रूप का स्पष्ट प्रकाशन कुछ बाद में हुआ। विष्णु-पुराण और भागवत-पुराण में भी राधा का अस्तित्व दृष्टिगोचर नहीं होता। विष्णु-पुराण में एक विशेष गोपी का उल्लेख अवश्य हुआ है जो रास-प्रसंग में कृष्ण-द्वारा पुष्पों से अलंकृता हुई थी और जिसके द्वारा दूसरे जन्म में

विष्णु अभ्यर्चित हुए थे :

> अत्रोपविश्य सा तेन कापि पुष्पैरलंकृता।
> अन्य जन्मनि सर्वात्मा विष्णुरभ्यर्चितो यया॥
>
> —विष्णुपुराण

संभवतः इसी आधार पर भागवत-पुराण के दसवें स्कंध में रास-प्रसंग में एक विशेष गोपी का उल्लेख हुआ है, जिस अपनी प्रियतमा को लेकर कृष्ण गायब हो जाते हैं और उसके साथ विविध प्रकार की क्रीड़ाएं करते हैं। अन्य गोपियां कृष्ण-विरहातुर हो जब उनके पदचिन्ह ढूंढ लेती हैं तो उस सौभाग्यवती को सराहती हुई कहती हैं :

'अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः' अर्थात् "इस बाला द्वारा निश्चय ही भगवान् ईश्वर हरि विशेष आराधित हुए हैं, इसीलिए गोविन्द ने हमें छोड़कर इस एकान्त स्थान में इसके साथ प्रीति की।"

उपर्युक्त संदर्भ में 'अनयाराधितो' शब्द से ही कुछ विद्वान राधा के उद्भव की कल्पना करते हैं। हो सकता है परवर्ती पुराणों—'ब्रह्मवैवर्तपुराण' आदि—में राधा की प्रचुर चर्चा का आधार यही संकेत रहा हो। पर सम्पूर्ण कृष्ण-साहित्य में एक बात स्पष्ट प्रतीत होती है, वह यह है कि गोपी-वल्लभ कृष्ण की अवतारणा के साथ ही उनके एक विशेष गोपी के साथ सम्बंध की बात भी आरम्भ से प्रचलित हो गई थी जिसे अन्य गोपियों पर वरीयता प्राप्त थी।

'हालसतसई' में उस विशेष गोपी का नाम स्पष्टतः राधा बताया गया है। अतः राधा की ऐतिहासिक विद्यमानता चाहे सन्दिग्ध हो, पर यह तथ्य है कि लोक-परम्परा ने कृष्ण की विशेष प्रिया के रूप में राधा को ईसा के आरम्भ से ही ग्रहण कर लिया था। कुछ विद्वानों का मत है कि राधा गोपालकृष्ण की तरह आभीरों की कुलदेवी या प्रेमदेवी रही होगी। हमारा निश्चित मत है कि आरम्भ में राधा कृष्ण की एक विशेष प्रिया के रूप में ही लोक-अनुश्रुति द्वारा ग्रहण हुई, बाद में उसे आराध्य का दर्जा प्राप्त हुआ। प्राचीन मूर्तियों या शिलापट्टों में यद्यपि सातवीं-आठवीं शताब्दी से पूर्व राधा के कोई चिन्ह नहीं मिलते : सातवीं-आठवीं शताब्दी का पहाड़पुर (बंगाल) से प्राप्त एक मूर्ति-फलक कृष्ण के साथ एक नारी को भी दर्शाता है जो सम्भवतः राधा ही होगी, तथापि कृष्ण की विशेष प्रियतमा की धारणा ईसा के आरम्भ काल में हो चुकी थी। तमिल की

'शिलप्पधिकारम्' (दूसरी शती ई०) रचना में उल्लेख मिलता है कि उस समय कन्नन (कृष्ण) मन्दिरों में कृष्ण और नप्पिन्नै की युगल मूर्ति स्थापित होती थी। आलवारों से पूर्व रचित ईसा की आरम्भिक शताब्दियों के तमिल साहित्य में कई जगह कन्नन-नप्पिन्नै (कृष्ण-राधा) की प्रेम-लीलाओं का उल्लेख मिलता है।

तमिल प्रदेश के आलवारों के गीतों में भी यह विशेष गोपी 'नप्पिन्नै' नाम से व्यक्त हुई है। नप्पिन्नै नामक उसी गोपी की इस प्रकार प्रधानता वर्णित हुई है जैसे उत्तर भारत के कृष्ण-भक्ति काव्य में राधा की। आलवार सन्तों ने नाप्पिन्नाई को भगवान कृष्ण की प्रियतमा एवं विष्णु की अर्द्धांगिणी लक्ष्मी का अवतार माना है। ८वीं शताब्दी से संस्कृत-प्राकृत के अन्य साहित्य में भी राधा का स्पष्ट उल्लेख मिलना आरम्भ होता है। भट्टनारायण (८वीं शती) ने अपने 'वेणी संहार' नाटक के नान्दी श्लोक में रस-प्रसंग में राधा के कुपित होने और कृष्ण द्वारा मनाने का उल्लेख करते हुए कहा है कि, "इस प्रकार भगवान का अनुनय सज्जनों की रक्षा करे।"

इसी प्रकार आठवीं शती के प्राकृत महाकाव्य 'गउडवहो' (वाक्पतिराज कवि-विरचित) के मंगलाचरण में भगवान् कृष्ण की स्तुति करता हुआ कवि कहता है—"राधा द्वारा कृष्ण के वक्ष-स्थल पर बनी कौस्तुभ मणि की किरणों जैसी चमकती हुई नखक्षत रेखाएं दुःखों को दूर करें।" 'ध्वन्यालोक' (९वीं शती) तथा 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' जैसे कई अन्य ग्रन्थों में भी ८वीं-९वीं शताब्दी में रचित कृष्ण-राधा-प्रेम लीलाओं-सम्बन्धी कुछ श्लोक संगृहीत हैं। दसवीं शताब्दी के मालवाधीश वाक्पति मंजु परमार के एक अभिलेख में कहा गया है कि, "जिन भगवान कृष्ण को (राधा की तुलना में) लक्ष्मी के वदनेन्दु से सुख नहीं मिलता तथा जिन्हें अपनी नाभि का कमल (राधा के मुख कमल के अभाव में) शांति प्रदान नहीं करता, उन राधा-विरहातुर मुरारिका कंपित वपु तुम्हारी रक्षा करें' (एपिग्राफिका इंडिका २३।१०८।३)

राधा के उद्भव का यही स्रोत है। अनुमान यही है कि कृष्ण के गोपी-बल्लभ रूप में एक विशेष गोपी-प्रिया की कल्पना एक ओर तो भावुक कवियों को रुचिकर प्रतीत हुई होगी, दूसरी ओर बाद में भक्तजनों ने विष्णु के अवतार कृष्ण के साथ राधा के लक्ष्मी-रूप अवतार की धारणा बना ली। तमिल भक्तों और आलवार संतों ने उस विशेष प्रिया को 'नाप्पिन्नाइ' नाम दिया।

प्राकृत-संस्कृत साहित्य में राधा नाम प्रचलित रहा और उसीके आधार पर हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं और उनके साहित्य में राधा की प्रतिष्ठा हुई। राधा के व्यक्तित्व का विस्तृत चित्रण सर्वप्रथम 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' में मिलता है। इसके अतिरिक्त 'देवी भागवत पुराण', 'राधातंत्र', 'राधिकोपनिषद्' आदि अन्य ग्रंथों में राधा की प्रतिष्ठा इष्टदेवी के रूप में हुई। १२वीं-१३वीं,-१४वीं शताब्दियों के संस्कृत-बंगला-हिन्दी कवियों—क्षेमेन्द्र, जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति आदि—ने राधा-कृष्ण की प्रणय-लीलाओं का विस्तृत गान किया। निम्बार्क, चैतन्य, बल्लभ, राधाबल्लभ, हरिदासी आदि कई वैष्णव सम्प्रदायों में राधा की उपासना उत्तरोत्तर महत्त्व पाती गई, यहां तक कि श्री वंशी अलि के ललित सम्प्रदाय में राधा का महत्त्व कृष्ण से भी बढ़ गया। इन सम्प्रदायों में प्रचलित राधा के रूप-स्वरूप पर संक्षिप्त प्रकाश डालना अप्रासंगिक नहीं होगा।

बल्लभ सम्प्रदाय में राधा की परब्रह्म श्रीकृष्ण की सर्व-भवन-समर्थ-रूपा शक्ति के रूप में प्रतिष्ठा हुई। गोसाईं विट्ठलनाथ ने 'स्वामिन्यष्टक' और 'स्वामिनि स्तोत्र' की रचना राधा की स्तुति में की। बल्लभ सम्प्रदाय में उत्तरोत्तर राधा की महत्ता बढ़ी। बल्लभ सम्प्रदाय में भी माधुर्यभाव की प्रधानता हो गई। राधा कृष्ण की पराशक्ति, अन्तरंग लीला-सहचरी और परमप्रिया मानी गई। बल्लभ सम्प्रदाय में उसके स्वकीया और परकीया तथा कृष्ण की विवाहिता आदि सब रूप स्वीकृत हुए।

माधुर्य भाव की प्रधानता चैतन्य या गौड़ीय सम्प्रदाय में भी स्वीकृत हो चुकी थी, पर बंगला वैष्णव भक्तों ने राधा के परकीया स्वरूप को अपनाया था और माधुर्य भक्ति में विरह भाव की प्रमुखता स्वीकार की थी। साथ ही चैतन्य और बल्लभ-सम्प्रदायी भक्तों के मुख्य इष्ट या आलम्बन श्रीकृष्ण ही थे। युगल उपासना का भी चलन हुआ, पर बल्लभ और चैतन्य सम्प्रदाय में राधा की स्वतंत्र पूजा का विधान विशेष नहीं हुआ। इसके विपरीत राधा-बल्लभ सम्प्रदाय में राधा के स्वकीया भाव को मान्यता मिली और राधा को श्री हितहरिवंश ने परम आराध्या स्वतंत्र अधिष्ठातृ देवी का दर्जा प्रदान किया। राधा को कृष्ण पर वरीयता प्राप्त हुई। श्री राधा चरणारविन्द की भक्ति ही राधाबल्लभीय भक्तों का एकमात्र साधन बनी। राधा-बल्लभ और हरिदासी सखी सम्प्रदाय में कृष्ण-गोपी-प्रेम तथा विरह-भाव का सर्वथा अभाव है।

वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीराधा कृष्ण की ही सर्वशक्ति-स्वरूपा स्वामिनी थीं। वहां राधा अंश ही है, अंशी तो श्रीकृष्ण ही हैं। सूरदास आदि पुष्टि-मार्गीय कवियों ने राधा-कृष्ण की प्रकृति-पुरुष रूप में मान्यता प्रकट करके भी उनके अभेद या अद्वैत की स्थापना की। बल्लभाचार्य ने राधा को कृष्ण की आह्लादिनी-शक्ति के रूप में मानते हुए गोपियों को राधा का अंग कहा है। राधाबल्लभ सम्प्रदाय की राधा श्री कृष्ण राध्या एवं गुरु-रूपा है। वह स्वयं पूर्ण शक्तिमान है। चैतन्य और बल्लभ सम्प्रदाय की राधा कृष्णउपासिका है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा की प्रधानता होते हुए कृष्ण का भी महत्त्व है। वास्तव मे राधाबल्लभ सम्प्रदाय में युगल उपासना अधिक प्रचलित हुई। श्री वंशीअली के ललित सम्प्रदाय में राधा की एकमात्र मान्यता हुई। वंशीअली ने कृष्ण के स्थान पर राधा की प्रतिष्ठा की। वंशीअली ने १८वीं शताब्दी के आरंभ में ललित सम्प्रदाय चलाया। उन्होंने राधा को ही परब्रह्म सर्वेश्वरी माना है। राधा ही सेव्य है, नंदकुमार कृष्ण तो उसके सेवकमात्र हैं :

> सेव्य सदा श्री राधिका सेवक नंद कुमार।
> दूजे सेवक सहचरी, सेवा विपुल विहार॥

श्रीकृष्ण राधा के अनन्य भक्त हैं। उनसे विहार करने के लिए ही श्री राधा ने अवतार लिया है। श्री राधा के रूप हैं—श्री राधा, लाल गिरधर, ललिता सखी और वृन्दावन। ये राधा श्रीकृष्ण के साथ नित्य विहाररत हैं। इस सम्प्रदाय में भी वियोग के लिए स्थान नहीं। इस प्रकार राधा की महत्ता—एकमात्र प्रतिष्ठा, सखीभाव, नित्य विहार-सुख आदि विशेषताएं ललित सम्प्रदाय में राधा-बल्लभ और हरिदासी सम्प्रदाय के प्रभाव का ही परिणाम है। श्री वंशीअली ने राधा की सत्ता और शक्ति कृष्ण-निरपेक्ष मानी है जबकि राधाबल्लभ सम्प्रदाय आदि पूर्व सम्प्रदायों में वह कृष्ण-सापेक्ष है। श्री वंशीअली ने अपनी रचना 'राधिका महारास' में कृष्ण के स्थान पर राधा की रास-लीला का वर्णन किया है। यहां कृष्ण गायब हैं। राधा ही वेणुवादन करती है और सखियों के साथ रास रचाती है।

'कनुप्रिया' की राधा : 'कनुप्रिया' में राधा का रूप-स्वरूप लगभग परंपरा-गत है। परंपरानुसार उसके लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों की कवि धर्मवीर भारती ने अवतारणा की है। राधा के परंपरागत रूप में भारती ने

कुछ नवीनता का समावेश किया। जहां पौराणिक तथा कृष्ण-काव्य की राधा उपेक्षिता ही रही, वहां 'कनुप्रिया' की राधा को अपनी उपेक्षा का दुःख है और इस उपेक्षा के भाव को दूर करने के लिए कवि ने 'इतिहास' और 'समापन' के अंतिम खण्डों में राधा के चरित्र का नवीन रूप प्रकट किया है। राधा को तन्मयता के अपने क्षणों पर गर्व है, पर साथ ही वह यह भी नहीं सह सकती कि उसे केवल कृष्ण-विलासिनी ही समझा जाय। इसी से वह पुनः अपने कनु की प्रतीक्षा में खड़ी होती है कि इस बार 'इतिहास'-निर्माण के समय वह अपने कनु का साथ देगी, कहीं कृष्ण इस बार की तरह इतिहास-निर्माण में अकेला न पड जाय ! वह कृष्ण को उपालंभ देती हुई कहती भी है :

> **सुनो मेरे प्यार !**
> **प्रगाढ़ केलिक्षणों में अपनी अन्तरंग**
> **सखी को तुमने बांहों में गूंथा**
> **पर उसे इतिहास में गूंथने से हिचक क्यों गये प्रभु ?**

कनुप्रिया, पृ० ८३

इतिहास-निर्माण के प्रयत्न में असफल और हताश कृष्ण अंत में राधा के ही शीतल आंचल में शांति पाते हैं। बहुत दिनों बाद कृष्ण को राधा की याद आती है और कृष्ण राधा को पुकारते हैं। भला न्याय, धर्म, कर्त्तव्य, दायित्व आदि की कोरी शुष्क बातों में कोई सुख कैसे पा सकता है ! विश्वास, प्रेम और तन्मयता के बिना इन उपदेशात्मक शब्दों की क्या सार्थकता है ? इसीसे कृष्ण अंत में फिर राधा को चाहते हैं। और राधा भी उसकी पुकार पर सब कुछ छोड़कर आ जाती है :

> **तुम्हें मेरी जरूरत थी न, लो मैं सब छोड़कर आ गया हू,**
> **ताकि कोई यह न कहे**
> **कि तुम्हारी अन्तरंग केलिसखी**
> **केवल तुम्हारे सांवरे तन के नशीले संगीत की**
> **लय बन कर रह गयी……**

'और जन्मान्तरों की अनन्त पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर खड़ी होकर राधा कृष्ण की प्रतीक्षा करती है, कि इस बार इतिहास बनाते समय कहीं कृष्ण अकेला न छूट जाय ! इस प्रकार 'कनुप्रिया' की राधा ने नारी के उपेक्षा-भाव को दूर कराकर उसके गौरव की रक्षा की है।

राधा सार्थकता पर विचार करती है। मान लो उसका अगाध विश्वास-

पूर्ण प्रेम, प्रगाढ़ और उद्दाम केलि-क्रीड़ा एक सपना थे, तो क्या यह भीषण नर-संहार वाला भारत-युद्ध सार्थक है, उचित है, यथार्थ है ?—यह प्रश्न है राधा का अपने कनु के प्रति। भावक राधा यहां तार्किक भी प्रतीत होती है और हिंसापूर्ण भीषण युद्ध के प्रति वितृष्णा जगाती है। उसे न्याय, धर्म, कर्त्तव्य, दायित्व आदि आदर्श शब्दों पर आधृत ऐसे युद्ध में कोई सार्थकता प्रतात नहीं होती। इतिहास और राजनीति के ऐसे निर्णय भी कैसे सार्थक माने जा सकते हैं ? राधा अपना समुद्र-सपना सुनाती हुई कहती है:

> और जूए के पांसे की तरह तुम निर्णय को फेंक देते हो
> जो मेरे पैताने है वह स्वधर्म
> जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म……

"यदि कहीं उस दिन मेरे पैताने दुर्योधन होता तो……आह !"—कृष्ण सोचते रह जाते हैं। तब न्याय और अन्याय तथा धर्माधर्म की कसौटी क्या रह जाती !

इस प्रकार अपने इस तार्किक रूप में राधा आधुनिका और नवीन प्रतीत होती है। कनुप्रिया राधा परंपरागत राधा की तरह कृष्ण की अगाध प्रेमिका और कोमल भावनाओं की सुन्दरी है। उस नवयौवना की पदचाप से अशोक पुष्पित हो उठता है। वस्तुतः वह स्वयं प्रकृति-स्वरूपा है। अशोक वृक्ष के 'तने के रेशों में कलियां बन, कोंपल बन, सौरभ बन, लाली बन' वह रेशे-रेशे में रमी हुई है। अशोक का प्रस्फुटन उसीका प्रस्फुटन तो है ! न जाने यह प्रकृति-पुत्री कितनी बार अशोक-वृक्ष के लिए धूल में मिली है, धरती में गहरे उतरी है !

नवोढ़ा राधा लजीली है, शर्मीली है। वह आरंभ में अपने प्रिय कनु से तम के प्रगाढ़ पर्दे में मिलती है। पर शनैः शनैः जब उसका कनु उसके जिस्म के तार-तार से झंकार उठता है, तो वह लाज के सब आवरण हटा लेती है। वह कनु को सम्पूर्णतः समर्पित हो जाती है। कृष्ण के आवाहन पर वह आती अवश्य है, चाहे मन की विवशता से कुछ देर में ही क्यों न आए। भय, संशय, गोपन, उदासी आदि भाव 'सर चढ़ी सखियों की तरह' राधा को घेर लेते हैं और वह कितना चाहकर भी कृष्ण के पास ठीक उसी समय नहीं आ पाती।

कनुप्रिया राधा परंपरागत भोली है। वह कनु-द्वारा आम्रबौर से उसकी क्वांरी, उजली मांग भरे जाने का अर्थ ठीक-ठीक समझ नहीं पाती। वह भोली भी है और नागरी भी। कृष्ण के कितने ही प्रणय-संकेत वह अच्छी तरह समझ लेती है। कृष्ण अर्द्धोन्मीलित कमल का फूल उसके पास भेजते हैं

तो वह समझ जाती है कि प्यारे ने उसे "संझा बिरियां बुलाया है।" पर साथ ही वह इतनी बावरी है कि पानी से "भरे हुए घड़े में अपनी चंचल आंखों की छाया देखकर उन्हें कुलेल करती हुई चटुल मछलियां समझकर बार-बार सारा पानी ढलका देती है!" वह कृष्ण-प्रेम में उसी तरह तन्मय है जैसे सूरदास आदि की गोपियां और राधा। वह 'श्याम ले लो', 'श्याम ले लो!' पुकारती हुई हाट-बाट में नगर-डगर में अपनी हंसी कराती घूमती है!

राधा के अलौकिक रूप की प्रतिष्ठा भी 'कनुप्रिया' में अधिकांशतः परंपरागत ही है। ललित सम्प्रदाय या राधावल्लभ और सखी सम्प्रदाय-जैसा आराध्य का रूप तो कनुप्रिया राधा का नहीं है, पर भारती ने बल्लभ सम्प्रदाय के परंपरागत दार्शनिक आधार पर उसके स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। कनुप्रिया राधा कृष्ण की आह्लादकारिणी शक्ति है। वही कृष्ण की योगमाया है। वह कहती है : "तुम्हारी शक्ति तो मैं ही हूं, तुम्हारा सम्बल तुम्हारी योगमाया, इस निखिल पारावार में ही परिव्याप्त हूं, विराट्, सीमाहीन, अदम्य, दुर्दान्त।" (कनुप्रिया, पृ० ३८)।

पर इस विराट् प्रकृति-रूपा, शक्ति-स्वरूपा, योगमाया, सीमाहीन राधा का छायातन ससीम है। वह सीमा में बंधकर अपने लीलामय की इच्छा पूरी करती है—उसकी विशिष्ट लीला-सहचरी बनती है। वेतसलता-कुंज में कृष्ण की मंजरी-परिणीता राधा ऐसी ही है। वह कहती है : "जब तुमने वेतसलता कुंज में गहराती हुई गोधूलि वेला में आम के एक बौर को चूर-चूरकर धीमे से अपनी चुटकी में भरकर मेरे सीमन्त पर बिखेर दिया तो मैं हतप्रभ हो गयी। मुझे लगा कि इस निखिल पारावार में शक्ति-सी ज्योति-सी, गति-सी फैली हुई मैं अकस्मात् सिमट आई हूं, सीमा में बंध गई हूं।" सीमा में बंधे राधा के छायातन को 'आदिम भय' भी व्याप्त होता है।

पर थोड़ी देर की इस भ्रांति के बाद राधा को अपने विराट् स्वरूप का चेत हो जाता है : "पर जब मुझे चेत हुआ तो मैंने पाया कि हाय सीमा कैसी, मैं तो वह हूं, जिसे दिग्वधू कहते हैं, कालवधू—समय और दिशाओं की सीमाहीन पगडंडियों पर अनन्त काल से, अनन्त दिशाओं में तुम्हारे साथ-साथ चलती चली आ रही हूं, चलती चली जाऊंगी.........इस यात्रा का आदि न तो तुम्हें स्मरण है, न मुझे और अंत तो इस यात्रा का है ही नहीं मेरे सहयात्री!"

कृष्ण की इस लीला-सहचरी को इस अनन्त यात्रा-पथ पर इतने मोड़ लेने

पड़े हैं, इतने रूपों में ढलना पड़ा है कि जिससे उसके कृष्ण के साथ अनन्त नाते जुड़ गए हैं। वह कनु की सखी-सहचरी है, साधिका है, बांध्वी है, मां, वधू, रक्षिता, प्रिया सब कुछ है।

निखिल सृष्टि का सृजन, स्थिति और संहार कनुप्रिया राधा और उसके प्यार से ही सम्बद्ध है। राधा कनु की सृजन-संगिनी है। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बंध में कहा जाता है कि सृष्टि परब्रह्म की इच्छा का परिणाम है। जब उस ब्रह्म को एक से अनेक होने की इच्छा होती है, तो वह अपने में से ही मकड़ी की तरह इस सृष्टि को उगल लेता है। कनुप्रिया राधा कहती है : "यदि इस सारे सृजन, विनाश, प्रवाह और अविराम जीवन-प्रक्रिया का अर्थ केवल तुम्हारी इच्छा है, तुम्हारा संकल्प है", तो 'तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ केवल मैं हूं, केवल मैं।' राधा से क्रीड़ारत होने के लिए ही कृष्ण स्वेच्छा से सृजन करते हैं। राधा उसकी सृजन-संगिनी है। कनु की राधा के साथ विहार-इच्छा ही सृष्टि का उद्‌भव है। दोनों का प्रगाढ़ प्यार और उद्दाम विलास ही सृष्टि की स्थिति है और जब गहरे प्यार और प्रगाढ़ विलास के बाद थककर राधा सो जाती है, तो यह सृष्टि नहीं रहती, विलीन हो जाती है। तब फिर कृष्ण में इच्छा जागृत होती है और वह राधा को जगाते हैं। इस प्रकार सृष्टि के उद्‌भव, स्थिति और संहार का क्रम राधा के प्यार पर ही आधृत है। राधा कहती है : 'और यह प्रवाह में बहती हुई तुम्हारी असंख्य सृष्टियों का क्रम महज हमारे गहरे प्यार, प्रगाढ़ विलास और अतृप्त क्रीड़ा की अनंत पुनरावृत्तियां हैं।'

यह निखिल सृष्टि राधा का ही लीलातन है—कृष्ण के आस्वादन के लिए। इस प्रकार राधा कृष्ण की आनन्द-प्रसारिणी शक्ति है, लीला-सहचरी है, योग-माया है। वह कनुप्रिया है, उसका प्यार प्रगाढ़ और उद्दाम है। वह मंजरी-परिणीता है, अतः स्वकीया है। कृष्ण के चले जाने पर वह विप्रलब्धा होती है, पर चिर-वियोग उसे नहीं व्याप सकता, क्योंकि इतिहास-निर्माण के कार्य से खिन्न और हताश कृष्ण को पुनः राधा की याद आती है, राधा की जरूत होती है और कृष्ण की पुकार पर राधा फिर मिलने की प्रतीक्षा में खड़ी हो जाती है। वह स्वाभिमानिनी है, अतः अपनी उपेक्षा सह नहीं सकती। वह कृष्ण को उपालंभ देती हुई उसके इतिहास-निर्माण-कार्य की आलोचना करती है, नर-संहारक युद्ध की निंदा करती है और इस बार इतिहास-निर्माण के कार्य में कृष्ण का साथ देने का संकल्प करती है। कनुप्रिया राधा परंपरा और नवीन का अद्‌भुत सामंजस्य है।

४ : कृष्ण का स्वरूप-विकास और 'कनुप्रिया' के कृष्ण

कृष्ण का उद्भव और स्वरूप-विकास : कृष्ण की चरित-कथा भारतीय संस्कृत का मूल है। इसने भारतीय जीवन के सभी अंगों को आच्छादित किया है। मूल रूप में कृष्ण महाभारत-काल के ऐतिहासिक महापुरुष थे। यों तो ऋग्वेद में भी कृष्ण अंगिरस नाम के एक ऋषि और उनके पुत्रादि का उल्लेख हुआ है (ऋग्वेद ८।८५।१-७) तथा एक स्थान पर कृष्ण नामक एक असुर की भी चर्चा है (ऋग्वेद ८-९६।१३-१५), ऐतरेय आरण्यक में भी कृष्ण हारीत नाम के एक उपाध्याय का उल्लेख हुआ है, पर प्रसिद्ध कृष्णाख्यान से इनका कोई सम्बंध नहीं। उत्तर वैदिक साहित्य से ही कंसारि कृष्ण की कथा प्राप्त होती है। 'छान्दोग्य-उपनिषद्' में घोर अंगिरस के शिष्य कृष्ण को जो देवकीपुत्र कहा गया है (छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।६) वह भी संयोग की ही बात प्रतीत होती है। महाभारत और पुराणों के कृष्ण से उनका भी कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता।

महाभारत (ईसा पूर्व लगभग १००० वर्ष) से ही कृष्ण के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। महाभारत और बाद में हरिवंशपुराण, भागवत पुराण आदि पुराणों में वर्णित कृष्ण-चरित्र का कितना अंश ऐतिहासिक है, इसका ठीक-ठीक निर्णय तो कठिन है, पर पौराणिक-धार्मिक आवरणों को हटाने से कृष्ण-चरित्र की ऐतिहासिकता का पर्याप्त आभास मिल सकता है। महाभारत के प्राचीन अंशों में कृष्ण के देवत्व या अवतारवाद की कोई कल्पना प्रतीत नहीं होती। बाद के अंशों में अवश्य कृष्ण को परमेश्वर नारायण और अवतार माना गया है। बौद्ध जातकों तथा जैनागम ग्रंथों आदि अवैष्णव रचनाओं में भी मानव-कृष्णाख्यान मिलता है जिससे प्रमाणित होता है कि कृष्ण

अपने समय के बहुत प्रसिद्ध महापुरुष थे। महाभारत के सभापर्व में भीष्म ने कृष्ण की प्रशस्ति करते हुए उन्हें ज्ञानी, विद्वान, समस्त वेद-शास्त्रों का ज्ञाता, कुशल राजनीतिज्ञ और शूरवीर कहा है। यद्यपि महाभारत में भी अलौकिक तत्त्व समा गये थे, जिनके कारण कृष्ण को परमेश्वर का दर्जा भी प्राप्त हुआ, तथापि अधिकतर महाभारत में महापुरुष कृष्ण के ही दर्शन होते हैं। सच तो यह है कि कृष्णाख्यान के इस मूल ग्रंथ (महाभारत) से ही हमें कृष्ण के दोनों ही रूप प्राप्त होते हैं—१. मानव लौकिक कृष्ण-रूप, २. परमेश्वर अलौकिक कृष्ण रूप। मानव-कृष्ण-संबंधी कुछ अतिशयोक्तियां भी महाभारत में हैं, जैसे कहा गया है कि देवताओं ने प्रसन्न होकर कृष्ण को अवध्यता का वरदान दिया हुआ था, पर इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कृष्ण ने वृष, कंस आदि अनेक दस्युओं का संहार, रुक्मिणी-हरण, नागजित के पुत्रों पर विजय, काशी नगरी का उद्धार आदि अनेक वीरता के कार्य किये थे।

महाभारत में कृष्ण के श्रृंगारिक रसिक रूप का कहीं कोई उल्लेख नहीं। सभापर्व में भी शिशुपाल कृष्ण की निंदा करते हुए जहां कृष्ण द्वारा पूतना, केशी, कंस आदि की हत्या का उल्लेख करता है, वहां कृष्ण के विलासी—गोपी-बल्लभ रूप का कोई जिक्र नहीं करता। चाहे सभापर्व का यह अंश प्रक्षिप्त माना जाय, तथापि इससे यह सत्य प्रमाणित होता है कि रास-रसिक गोपी-बल्लभ कृष्ण की कल्पना महाभारत में नहीं थी। अतः ब्रजबिहारी गोपाल कृष्ण के चरित्र का आविर्भाव और विकास महाभारत के बाद ही हुआ। ईसा के आरंभ से पुराणकाल तक ही कृष्ण के श्रृंगारी रसिक रूप की अवतारणा और पूर्ण विकास हुआ। संभवतः महाभारत और जातकों में वर्णित कृष्ण के रुक्मिणी-हरण, सत्यभामा-मान-मनुहार, 'महाउमग्ग जातक' के अनुसार कृष्ण द्वारा ऋक्ष-कन्या जांबवती पर कामासक्त होकर उसे महिषी बनाना आदि प्रसंगों के आधार पर लोक-जीवन तथा साहित्य में ईसा के आरंभकाल या इससे कुछ पूर्व ही कृष्ण का रसिक रूप भी प्रचलित हो चुका था। हाल की 'गाहा सतसई' की कई गाथाएं कृष्ण के रसिक प्रेमी रूप की परिचायक हैं। कृष्ण के राजसी वैभव का ऐश्वर्यपूर्ण और विलास-क्रीड़ाओं का नग्न चित्रण सर्वप्रथम हरिवंशपुराण में ही विस्तारपूर्वक मिलता है। हरिवंश-पुराण के ८८-८९ वें अध्यायों में कृष्ण अपनी सोलह हजार स्त्रियों और वेश्याओं के साथ जल-क्रीड़ा तथा भोग-विलास में मग्न दिखाये गये हैं।

हरिवंश और विष्णुपुराण में गोपाल-कृष्ण का संक्षिप्त वर्णन है। भागवतपुराण में कृष्ण के जन्म से लेकर द्वारिकावास तक का सम्पूर्ण चरित्र अंकित हुआ है। गोपाल कृष्ण, ब्रजबिहारी रसिक कृष्ण, बालकृष्ण आदि कृष्ण के सब रूपों—ऐश्वर्यपूर्ण राजस और माधुर्यपूर्ण श्रृंगारी आदि सभी का विस्तृत चित्रण हुआ है। भागवतपुराण में कृष्ण की लोक-प्रचलित सभी लीलाओं को अधिकाधिक महात्व मिला है।

कृष्ण के देव-रूप का विकास : वीर और महान् की पूजा के जनसिद्धांत ने कृष्ण को शीघ्र ही आराध्यदेव बना दिया। आरम्भ में कृष्ण सात्वत विष्णि जाति के पूज्य पुरुष रहे, बाद में शीघ्र ही पूज्य देव बन गये। कृष्ण का सर्व-प्राचीन देवरूप वासुदेव है। पाणिनि (ई० पू० ६ठी शती) की 'अष्टाध्यायी' में सर्वप्रथम वासुदेव का उल्लेख मिलता है। सात्वत जाति में न केवल वासुदेव की पूजा प्रचलित थी, अपितु उनके साथ संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न (रुक्मिणी से कृष्ण-पुत्र), शाम्ब (जाम्बवती से कृष्ण-पुत्र) और अनिरुद्ध (प्रद्युम्न-पुत्र) की पूजा का भी विधान था। महाभारत, जातक कथाओं तथा पौराणिक प्रसंगों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये सब ऐतिहासिक पुरुष थे और सात्वत जाति में पंचवीरों के रूप में विख्यात हो चुके थे, जिन्हें बाद में देवरूप प्राप्त हुआ। पुराणों में सर्वप्राचीन वायुपुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि विष्णि वंश के इन पाँच वीरों की पूजा होती थी। इनमें वासुदेव को वरीयता प्राप्त थी। दूसरा स्थान संकर्षण का था। मैगास्थनीज ने भी स्पष्ट लिखा है कि ईसापूर्व चौथी शताब्दी में मथुरा प्रदेश में वासुदेव की उपासना प्रचलित थी। मथुरा प्रदेश की यही वासुदेवोपासना भागवत धर्म के रूप में विकसित हुई और उत्तर-पश्चिमी और दक्षिणी भारत में फैलती गई। तक्षशिला से प्राप्त एक अभिलेख से पता चलता है कि ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में तक्षशिला के यवन-राज अन्तियालकिद के समय में वासुदेव के गरुड़ध्वज की स्थापना हुई थी। चित्तौड़ (राजस्थान) में ई० पू० पहली शताब्दी में कई भागवत (वासवदेवो-पासक) राजा हुए थे। एक अभिलेख के अनुसार सर्वतात नामक राजा ने संकर्षण-वासुदेव पूजा-शिला-प्राकार का निर्माण कराया था।

कुछ विद्वान् भ्रमवश इस वासुदेव-रूप और कृष्ण-रूप के एक होने में संदेह करते हैं। पातंजलि (पहली शती ई० पू०) के भाष्य में वासुदेव की कृष्ण से अभिन्नता का स्पष्ट उल्लेख है। हरिवंशपुराण आदि परवर्ती रचनाओं में

भी वासुदेव कृष्ण को ही भागवत धर्म का आराध्यदेव कहा गया है। आरंभ में कृष्ण की अपेक्षा वासुदेव नाम के प्रचलन का रहस्य क्या है ? इस सम्बन्ध में मेरा निश्चित मत है कि १. आरंभ में कृष्ण नाम लौकिक पुरुष के रूप में प्रसिद्ध रहा होगा। कृष्ण के बालचरित्र तथा लौकिक कार्यों का स्मरण कृष्ण नाम से किया जाता था और उनके देव-रूप को वासुदेव नाम मिला। बौद्ध जातकों आदि में, जहाँ कृष्ण के लौकिक रूप की मान्यता है, अधिकतर कृष्ण या कान्ह नाम ही मिलता है, पर आराध्य रूप में वासुदेव नाम अधिक प्रचलित हुआ। २. बलराम की देवरूप में प्रसिद्धि संकर्षण नाम से हुई, इसलिए भी संभवतः संकर्षण से मिलता-जुलता होने के कारण कृष्ण की अपेक्षा वासुदेव नाम अधिक लोक-प्रचलित हुआ। ३. क्योंकि वासुदेव मूलतः शूरसेन प्रदेश के सात्वत वृष्णिवंशी ग्वालों के कुलदेवता थे, इसीसे पितृ-वाचक वासुदेव नाम को आरंभ में महत्ता प्राप्त हुई। बाद में गोपाल कृष्ण की भी प्रतिष्ठा हो जाने पर कृष्ण नाम भी पूज्य हो गया।

विष्णु अवतार वासुदेव कृष्ण : वासुदेव कृष्ण को महाभारत से ही नारायण और विष्णु का अवतार माना जाने लगा था। महाभारत में अनेक स्थानों पर कृष्ण को नारायण कहा गया है। ईसापूर्व की अंतिम शताब्दियों में नारायणीय या पंचरात्र नाम से एक उपासना-सम्प्रदाय प्रचलित था, जिसमें भक्त नारायण को परमेश्वर मानकर पूजते थे। मूलतः नारायण और विष्णु वैदिक देवता थे। भागवत सम्प्रदाय में नारायण, विष्णु और कृष्ण के अभिन्न रूप की प्रतिष्ठा हुई। विष्णु और नारायण सर्वथा पर्यायवाची हो गए और कृष्ण को इनका अवतार माना जाने लगा। महाभारत के उत्तर अंशों में विष्णु के दशावतारों—वाराह, वामन, नृसिंह, राम, कृष्ण, परशुराम, हंस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि—का स्पष्ट उल्लेख है। भागवत धर्म या सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा उत्तर महाभारत काल से गुप्तकाल के कुछ बाद तक रही। गुप्तकाल में इस धर्म को राजाश्रय भी प्राप्त था। गुप्तकालीन तथा बाद के अनेक राजा 'परम भागवत' कहलाते थे। इस काल में कृष्ण की अपेक्षा वासुदेव, गोविन्द, माधव, मधुसूदन नामों का देवरूप में अधिक उल्लेख मिलता है।

ईसा पूर्व की पहली-दूसरी तथा ईसा की आरंभिक शताब्दियों में आभीर जाति ने कृष्ण के गोपाल कृष्ण और ब्रज बिहारी बालकिशोर कृष्ण रूप को भी महत्ता प्रदान की। कृष्ण के बाल-क्रीड़ा-कौतुक और लीलाएं सर्वत्र प्रच-

लित हो गईं। पुराणों में इन लीलाओं की चरम साहित्यिक अभिव्यक्ति हुई है। पुराणों से पूर्व के साहित्य तथा प्राचीन मूर्तियों और शिलापट्टों पर उत्कीर्ण अनेक चित्रों से भी कृष्ण-लीलाओं की लोक-प्रसिद्धि के प्रमाण मिलते हैं। इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि कृष्ण की बाल और किशोर-काल की ब्रज लीलाओं को अलौकिक रूप ईसा से कुछ पूर्व ही प्राप्त हो चुका था और ईसा की आरंभिक शताब्दी में तो वे समूचे भारत में जन-आराधना का विषय बन चुके थे।

भागवत धर्म पर नारायणी पंचरात्र आदि वैष्णव भावनाओं, बौद्ध-जैन आदि धर्मों का भी किंचित् प्रभाव पड़ा। इस भागवत या वैष्णव धर्म का चरम विकास पुराणकाल में हुआ। महाभारतोत्तर काल में गीता के अनुसार भगवान् के अवतार लेने का हेतु यही माना जाता था कि वे धर्म की स्थापना, दुष्टों के नाश और साधुओं के परित्राण के लिए अवतार लेते हैं। पर पुराण-काल में अर्थात् ईसा की ५वीं-६वीं शताब्दी से वैष्णव भक्ति-पद्धतियों का दार्शनिक विकास होने लगा। नारदीय भक्ति-सूत्र और शांडिल्य भक्ति-पद्धति के प्रभाव से पुराणकाल में यह विश्वास प्रमुख हो गया कि भगवान् के अवतार का मुख्य हेतु भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए अपनी लीलाओं का विस्तार करना और लीला-भजन-रसानन्द प्रदान करना है। इसी से कृष्ण के अनुरंजन-कारी बाल और किशोर रसिक रूप का महत्त्व बढ़ा और दास्य, नवधा आदि वैधी भक्ति-पद्धतियों के साथ-साथ माधुर्य भाव-भक्ति की प्रतिष्ठा हुई।

कृष्ण के प्रति इस नयी भाव-भक्ति का विकास दक्षिण के आलवार संतों द्वारा ईसा की ५वीं शताब्दी से ६वीं शताब्दी के बीच हुआ। इन आलवारों ने कृष्ण नायक के प्रति अपनी आत्मा नायिका का आत्मसमर्पणकारी प्रेमभाव प्रदर्शित किया है। इन्होंने कृष्ण की बाल-लीलाओं और गोपी-प्रेम-लीलाओं का भी वर्णन किया। इन आलवार भक्तों ने दक्षिण भारत में कृष्ण भक्ति का खूब प्रचार और प्रसार किया। दक्षिण में वैष्णव भक्ति के कई सम्प्रदाय विकसित हुए।

वैष्णव भक्ति के विविध सम्प्रदाय—दक्षिण में रामानुज, निम्बार्क, विष्णुस्वामी तथा मध्व आचार्य नाम के चार प्रमुख आचार्यों ने अपने-अपने क्रमशः श्री या रामानुज सम्प्रदाय, निम्बार्क या सनक सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी सम्प्रदाय तथा ब्रह्म अथवा माध्व सम्प्रदाय स्थापित किये। कृष्णभक्ति के

प्रचार, प्रसार एवं दार्शनिक तथा व्यावहारिक विकास में इन सम्प्रदायों का महत्त्वपूर्ण योग है। उत्तर भारत में भी कृष्णभक्ति का प्रसार इन्हीं द्वारा हुआ। उत्तर भारत से ही यद्यपि वैष्णव भक्ति दक्षिण भारत में गई थी, पर ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी के पश्चात् वैष्णव धर्म भावना उत्तरी भारत में कुछ दब-सी गई थी, परन्तु दक्षिण भारत में वह खूब पनपी। दक्षिण के ही आचार्यों-द्वारा वैष्णवी भावना का उत्तर भारत में पुनरुत्थान हुआ। शंकर के मायावाद का खण्डन करके इन आचार्यों ने विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि कई दार्शनिक सिद्धांतों की स्थापना की।

बारहवीं शताब्दी में दक्षिण के निम्बार्काचार्य तेलगु प्रदेश से आकर वृन्दावन में बस गये थे। 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव इन्हीं के शिष्य थे। इन्होंने राधाकृष्ण की उपासना का प्रवर्त्तन किया और अपना द्वैताद्वैतवादी सिद्धांत-मार्ग चलाया। इन्हीं से प्रभावित स्वामी हरिदास ने १६वीं शती में अपने हरिदासी या सखी सम्प्रदाय की स्थापना की। स्वामी मध्वाचार्य (सन् ११९७-१२७६) ने अपना द्वैतवादी वैष्णव सम्प्रदाय चलाया। इन्होंने भी कृष्ण को अपना आराध्य बनाया। उत्तर भारत में राधाबल्लभ संप्रदाय के प्रवर्त्तक गोसाईं हितहरिवंश (जन्म सन् १५०२ ई०) पर इनका भी प्रभाव पड़ा। विष्णुस्वामी ने अपने शुद्धाद्वैतवाद की नींव डाली। बल्लभाचार्य इन्हीं की शिष्य-परंपरा में हुए जिन्होंने इसी मत के आधार पर अपने बल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना की। बल्लभाचार्य ने ब्रज-प्रदेश में कृष्ण-भक्ति का खूब प्रचार और प्रसार किया।

इस प्रकार उत्तर भारत में ईसा की चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दियों से वैष्णव भक्ति—विशेषकर कृष्ण भक्ति का एक सजीव वातावरण समस्त भारत में उत्पन्न हो गया। इस प्रकार के मध्ययुगीन वातावरण में परमभक्त सूरदास, नंददास, परमानन्ददास, मीरांबाई आदि के कृष्ण-भक्ति-काव्य की सरस स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई।

बल्लभ सम्प्रदाय आदि कृष्णभक्ति के इन सम्प्रदायों में कृष्ण को विष्णु का अवतार और अपने तात्त्विक रूप में पूर्ण ब्रह्म माना जाता है। कृष्ण परब्रह्म को एक अखण्डित, आदि अनादि, अद्वैत तत्त्व मानते हुए भी इन्होंने उसे सच्चिदानन्द स्वरूप कहा है। वह अविनाशी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। वह समस्त जगत् का आधारभूत कारण है। वह अविभक्त है, अपनी इच्छा-

मात्र से विभक्त होने वाला है। वह एकरस है और अपनी अनेक शक्तियों के साथ अपने स्वरूप और स्वरचित लीला में निरन्तर मग्न रहता है। उसे जब बाह्य प्रकार से रमण करने की इच्छा होती है तो स्वान्तः स्थित आनन्द-धर्मी आधिदैविक रूप से वह अपनी शक्तियों के साथ रमण करता है। उसका वही आनन्द धर्म प्रकट रूप पुरुषोत्तम कृष्ण कहलाता है। वह निर्गुण और निशेष होते हुए भी सगुण और सविशेष है। अदृश्य होते हुए भी सदृश्य है। इसी विरुद्धधर्मता के कारण पूर्णावतार कृष्णावतार दशा में वह बालक होते हुए भी रसिक-मूर्धन्य है। जो ब्रह्म मन और वाणी से परे है, वही साधना और भक्ति से स्वेच्छापूर्वक गम्य और गोचर भी हो जाता है। इस सच्चिदानन्द-रूप ब्रह्म में आविर्भाव और तिरोभाव की शक्ति है जिससे वह एक से अनेक और अनेक से एक होता है। ब्रह्म से ही सभी पदार्थों का आविर्भाव और उसी में सबका तिरोभाव होता है। उसकी इच्छा शक्ति ही बल्लभादि सम्प्रदायों में उसकी योगमाया या माया शक्ति है। यह माया शंकर की माया की तरह झूठी नहीं। वह आनन्दी अपने आनन्द के लिए ही लीला-विस्तार करता है। 'रसो वै सः' —वह पर ब्रह्म रस-रूप है। यही ब्रह्म आनन्दकार पुरुषोत्तम रूप में अपनी इच्छानुसार अनेक लीलाओं में मग्न रहता है। उसके परमधाम को गोलोक कहते हैं। अपनी आनन्द-प्रसारिणी शक्तियों को अपने में से ही प्रसारित करके यह ब्रह्म अनेक आनन्द-लीलाएं करता है। इसी रसरूप पुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण) की लीलाओं में भाग लेकर उसका नैकट्य प्राप्त करना ही कृष्ण-भक्तों का काम्य होता है।

जब आनन्दस्वरूप पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण-रूप में अपने आनन्द के लिए बाह्य लीला करना चाहता है, तब उसकी शक्तियां भी बहिः स्थित हो जाती हैं और विविध रूप, गुण और नामों से उनसे विलास करती हैं। उन शक्तियों में श्रिया, पुष्टि, गिरा आदि बारह शक्तियां प्रमुख हैं। वही श्री स्वामिनी राधा के रूप में अन्य नामों से प्रकट होकर पुरुषोत्तम के साथ ही प्रकट होती है। इन शक्तियों—विशेषतः राधा के साथ क्रीड़ा करने के लिए पुरुषोत्तम अपने में से (अपनी शक्ति से) श्री वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना, कुंज-निकुंज, वृक्ष, पशु-पक्षी गोकुल आदि अपना लोकलीला-धाम प्रकट करता है।

'कनुप्रिया' के कृष्ण : बल्लभ, राधाबल्लभ, सखी आदि सम्प्रदायों में भगवान् कृष्ण के रूप में एक विशिष्टता रही है। जहां अन्य दक्षिणी सम्प्रदाय

मर्यादा-मार्गी रहे हैं, वहाँ इनमें केवल प्रेम तत्त्व की मान्यता है। इसी कारण वल्लभादि सम्प्रदायों के रास-रसिक पुरुषोत्तम और रामानुज अथवा रामानन्दी सम्प्रदाय के मर्यादा पुरुषोत्तम ब्रह्म में अन्तर है। मथुरा, द्वारिका, कुरुक्षेत्र आदि में लोक-रक्षण, धर्म-संस्थापन की लीलाएं करने वाले तथा दुष्टों का संहार करने वाले कृष्ण का रूप लोक-वेद-प्रथित धर्म-संस्थापक रूप है और बाल रूप में माता यशोदा, बाबा नन्द आदि को आनन्दित करने वाले, ग्वाल सखाओं के साथ गोचारण करने वाले या गोकुल-वृन्दावन में राधा तथा गोपियों के साथ रस रचाने वाले किशोर कृष्ण का रूप रसात्मक है। पुष्टिमार्ग (वल्लभ सम्प्रदाय), राधावल्लभादि उत्तरी भारत के कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों में रसेश कृष्ण को ही मुख्यतः अपनाया गया। इसी रसेश भगवान् कृष्ण को ही अपनी समस्त वस्तुओं, भावों-सहित समर्पण कर देना ही ब्रह्मभाव की प्राप्ति है।

यह रसेश कृष्ण अपनी इच्छा से सृष्टि-सृजन करता है। राधा इसकी शक्ति है, योगमाया है। 'कनुप्रिया' में कवि भारती ने इसी रसेश कृष्ण की प्रतिष्ठा की है। 'कनुप्रिया' का कनु रसिक शिरोमणि है। वह राधा के सम्पूर्ण का लोभी हो जाता है, प्रणाम-मात्र को नहीं स्वीकारता और राधा के जिस्म के तार-तार में समा जाता है। राधा का यह सांवरा कनु वीतरागी या निर्लिप्त नहीं है। वह राधा को 'कण-कण रोम-रोम अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में पोर-पोर कस' लेता है। वह कदम्ब अथवा आम की डाल के नीचे खड़े होकर बांसुरी की धुन में राधा को टेरता है। राधा उसकी बांसुरी के गहरे अलाप से मदोन्मत्त हो खिंची आती है। वह शरद शर्वरी में रास रचाता है, राधा और गोपियों को बाँसुरी बजाकर खींच बुलाता है और अंशतः ग्रहण कर सम्पूर्ण बनाकर लौटा देता है।

राधा और कनु का नाता विशिष्ट है। राधा कनु की शक्ति है, लीला-सहचरी है। समस्त सृष्टि राधा का लीलातन है कृष्ण के आस्वादन के लिए। कृष्ण का अपनी प्रिया राधा से अटूट प्रेम है। कनु 'पोई की जंगली लतरों के पक्के फलों को तोड़कर, मसल कर, उनकी लाली से राधा के पांवों को महावर रचने के लिए अपनी गोद में रखता है। वह राधा की क्वांरी उजली मांग को आम्र-बौर से भरकर उसके साथ मंजरी-परिणय करता है।

पुष्टिमार्ग में मान्य कृष्ण का विरुद्ध धर्माश्रयत्व 'कनुप्रिया' में भी दिखाई

देता है। 'कनुप्रिया' का कनु छोटा-सा भोला शिशु भी है और कालीय-मर्दन करने वाला, इन्द्र-प्रकोप, दावानल आदि से ब्रज की रक्षा करने वाला सर्वसमर्थ भी है। वह बाल भी है, पैंगुंड भी है। राधा कहती है, पर दूसरे ही क्षण जब घनघोर बादल उमड़ आये हैं और बिजली तड़पने लगी है और घनी वर्षा होने लगी है और सहारे वनपथ धुँधलाकर छिप गए हैं तो मैंने अपने आंचल में तुम्हें दुबका लिया है, तुम्हें सहारा दे-देकर अपनी बांहों में घेरकर गाँव की सीमा तक तुम्हें ले आयी हूं। और सच-सच बताऊं तुझे कनु सांवरे! कि उस समय मैं बिल्कुल भूल गयी हूं कि मैं कितनी छोटी हूं और तुम वही कान्हा हो जो सारे वृन्दावन को जलप्रलय से बचाने की सामर्थ्य रखते हो, और मुझे केवल यही लगा है कि तुम छोटे-से शिशु हो—असहाय; वर्षा में भीग-भीग कर मेरे आंचल में दुबके हुए और जब मैंने सखियों को बताया···तो मेरे उस सहज उद्‌गार पर सखियाँ क्यों कुटिलता से मुसकाने लगीं, यह मैं आज तक नहीं समझ पायी!" (पृ० ३७-३८)

कनु परब्रह्म है। उसीकी इच्छा का परिणाम यह सृष्टि है। 'सारे सृजन, विनाश, प्रवाह और अविराम जीवन-प्रक्रिया का अर्थ है केवल कनु की इच्छा! कनु का संकल्प!' इस इच्छा का वास्तविक हेतु है अपनी शक्ति, अपनी चिर-लीला-सहचरी राधा के साथ रमण की इच्छा। राधा कहती है: "कौन है वह जिसकी खोज में तुमने काल की अनन्त पगडण्डी पर सूरज और चाँद को भेज रखा है···कौन है जिसे तुमने झंझा के उद्दाम स्वरों में पुकारा है···कौन है जिसके लिए तुमने महासागर की उत्ताल भुजाएँ फैला दी हैं···वह मैं हूँ मेरे प्रियतम! वह मैं हूँ।" (कनुप्रिया, पृ०४४)

जब-जब सूनेपन का भान होता है, तब-तब मजबूर होकर कनु अपनी शक्ति राधा को जगाते हैं—अपने गहरे प्यार को दोहराने के लिए। और राधा जागती है, संकल्प की तरह, इच्छा की तरह। और सृष्टि का उद्‌भव होता है। गहरे प्यार के बाद जब कनु की योगमाया और लीलासहचरी राधा थक कर सो जाती है, तब सृष्टि नहीं रहती। "यह प्रवाह में बहती हुई कनु की असंख्य सृष्टियों का क्रम महज कनु और राधा के गहरे प्यार, प्रगाढ़ विलास और अतृप्त क्रीड़ा की अनन्त पुनरावृत्तियां हैं।"

इस प्रकार ब्रजकिशोर कनु का प्रेमी, रसिक और लीलामय रूप लगभग परंपरागत ही है। 'कनुप्रिया' के अंतिम 'इतिहास' और 'समापन' खण्डों में

कवि धर्मवीर भारती ने कनु के इतिहास-पुरुष-रूप को नये ढंग से प्रस्तुत किया है। यहाँ कृष्ण के इतिहास-निर्माण की असफलता दिखाकर भारती ने प्रकट किया है कि विश्वास, प्रेम और तन्मयतापूर्ण क्षणों की उपेक्षा करके युग-निर्माण नहीं हो सकता और अपनी शक्ति के बिना कृष्ण या ब्रह्म अपने बचनों की सार्थकता प्रमाणित नहीं कर सकते। अन्ततः अपनी योगमाया, अपनी लीला-सहचरी या सृजन-संगिनी के आँचल में ही उन्हें शांति मिलती है। राधा की उपेक्षा दूर करने के लिए ही कवि ने कृष्ण के इस नये रूप की कल्पना की है। इतिहास-प्रथित कृष्ण के चरित्र को यहाँ जो दोषयुक्त दिखाया गया है, उसका उद्देश्य राधा और उसके तन्मयतापूर्ण प्रेम को महत्ता प्रदान करना ही है। कृष्ण की तथाकथित धर्मयुद्ध-संरचना, युद्ध में भीषण नर-संहार की हिंसापूर्ण स्थिति, युद्ध की अकल्पनीय अमानुषिक घटनाओं, कर्म, स्वधर्म, दायित्व, जूए के पाँसे की तरह फेंके गए निर्णय को असार्थक मानते हुए राधा के विश्वास और अगाध प्रेम के तन्मयतापूर्ण क्षणों की सार्थकता स्वीकार की गई है।

अपनी शक्ति राधा के बिना अपने इतिहास-निर्माण में कनु अकेला पड़ जाता है। वह इस इतिहास-निर्माण के प्रपंच से दुःखी होकर पुनः राधा की याद करता है।

इस प्रकार 'कनुप्रिया' के कृष्ण रास-रसिक रसेश कृष्ण हैं। वह परब्रह्म हैं और अपनी इच्छानुसार कृष्ण-रूप में अवतरित हो अपनी योगमाया या शक्ति राधा के साथ आनन्द-मग्न होते हैं। 'कनुप्रिया' में कृष्ण का यही रसेश-रूप सार्थक माना गया है। कृष्ण के धर्म-संस्थापक या इतिहास—निर्माता रूप की सार्थकता पर संदेह किया गया है। उसकी सार्थकता राधा के बिना संभव नहीं। इसी से राधा को अब पुनः कृष्ण की प्रतीक्षा में रत दिखाया गया है कि इस बार के इतिहास-निर्माण में राधा कृष्ण को अकेला नहीं पड़ने देगी, विफल नहीं होने देगी, स्वयं उसका साथ देगी।

५ : कनुप्रिया का प्रतिपाद्य : युगबोध

'कनुप्रिया' में कवि धर्मवीर भारती का मुख्य उद्देश्य राधा की भावानुभूतियों का प्रकाशन है। राधा के सौन्दर्य, पूर्वराग, कृष्ण-प्रेम, अलौकिक प्रणय, वियोग-व्यथा, उपालम्भ आदि का वर्णन ही 'कनुप्रिया' का विषय-पक्ष है। यहाँ प्रश्न यह है कि राधा के इस प्रणय-चित्रण और भावानुभूति-प्रकाशन से कवि जीवन का क्या संदेश देना चाहता है। 'कनुप्रिया' में युग-बोध की क्या क्षमता है ? इसमें जीवन की किसी समस्या को उठाया गया है या नहीं ?

आधुनिक युग में उपेक्षिता नारी के प्रति सहानुभूति का भाव जागृत हुआ। कवीन्द्र रवीन्द्र से संकेत पाकर महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' पर खेद प्रकट किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि 'साकेत' में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लक्ष्मण-पत्नी उर्मिला के चरित्र को प्रकट करके उसकी उपेक्षा का भाव दूर किया। इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' में गौतम-पत्नी के उज्ज्वल चरित्र का प्रकाशन करके नारी-गौरव की स्थापना की। युग-युग से पीड़ित और उपेक्षित नारी के उत्थान की आवाज़ आधुनिक युग में बुलंद हो चुकी थी। इसी भावना के आलोक में श्री धर्मवीर भारती ने 'कनुप्रिया' में उपेक्षिता राधा के नारी-गौरव की रक्षा की है। राधा के संबंध में दार्शनिकों ने तात्त्विक रूप से तो बड़ी महान् धारणा बना ली थी : राधा को कृष्ण परब्रह्म की शक्ति, योगमाया कहा गया; राधा कृष्ण की आनन्द-प्रसारिणी शक्ति है, सृष्टि का उद्भव, स्थिति और लय उसी पर निर्भर है। ब्रजकिशोर कृष्ण और राधा का प्रेम अटूट है। राधा कृष्ण की चिरलीला-सहचरी है। तो स्वभावत: प्रश्न उठता है कि ब्रज से जाने के बाद-मथुरा, द्वारिका, कुरुक्षेत्र में जाने पर कृष्ण अपनी चिरप्रिया राधा को एकदम भुला क्यों देते हैं ! अपनी इस शक्ति को इतिहास-निर्माण में अपनी

सहचरी क्यों नहीं बनाते ? क्या राधा केवल कृष्ण-विलासिनी बनकर रह गई ?

कृष्ण द्वारा अपनी इस उपेक्षा की प्रतिक्रिया राधा के मन पर क्या हुई होगी—इस बात का विचार मध्यकालीन किसी कवि ने नहीं किया। 'कनु-प्रिया' में ही संभवत: सर्वप्रथम राधा की इस मनोवैज्ञानिक स्थिति पर ध्यान गया है। श्री धर्मवीर भारती ने राधा के अन्तर्मन की इसी प्रतिक्रिया का सुन्दर चित्रण 'कनुप्रिया' में किया है। सूरदास आदि मध्यकालीन कृष्ण कवियों की राधा तो अपने अश्रु-विगलित नेत्रों को पोंछती रह जाती है या अधिक-से-अधिक प्रिय की मंगल-कामना करती रहती हैं, उसके पास कृष्ण के इतिहास-निर्माण की आलोचना करने की दृष्टि या बुद्धि नहीं थी।

'कनुप्रिया' की राधा इस दृष्टि से आधुनिक भाव-बोध की परिचायक है। वह कनु प्यारे से प्रश्न करती है, उपालंभ देती है, उसके युद्ध-आयोजन की आलोचना करती है। राधा कनु से पूछती है :

> **सुनो कनु सुनो**
> **क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी तुम्हारे लिए**
> **लीलाभूमि और युद्ध-क्षेत्र के**
> **अलंघ्य अन्तराल में !** (पृ०६२)

'मंगलछाया' गीत में कनु के युद्ध-आयोजन पर मीठा व्यंग्य किया गया है। 'एक प्रश्न' करती हुई राधा पूछती है : प्यारे कनु, "मान लो कि क्षणभर को मैं यह स्वीकार लूं कि मेरे वे सारे तन्मयता के गहरे क्षण सिर्फ भावावेश थे, सुकोमल कल्पनाएं थीं, रंगे हुए, अर्थहीन, आकर्षक शब्द थे"—तो क्या पाप-पुण्य, धर्माधर्म, न्याय-दण्ड, क्षमाशील वाला यह तुम्हारा युद्ध सत्य है ? ये धारा में बह-बह कर आते हुए शव, टूटे हुए रथ, जर्जर पताकाएं, हारी हुई सेनाएं, जीती हुई सेनाएं, नभ को कंपाते हुए युद्ध-घोष, क्रन्दन-स्वर, भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई युद्ध की अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएं क्या ये सब सार्थक हैं ? लाशों पर मंडराने के लिए 'जाते हुए गृद्धों को क्या तुम बुलाते हो ? (जैसे बुलाते थे भटकी हुई गायों को)'।

राधा कनु के स्वधर्म, अधर्म के निर्णय की आलोचना करती हुई 'समुद्र-स्वप्न' में कहती है :

"और जुए के पांसे की तरह तुम निर्णय को फेंक देते हो
जो मेरे पैताने है वह स्वधर्म
जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म......"

अंतिम गद्यगीतों में कनु को इतिहास-निर्माण में असफल और खिन्न दिखाया गया है। हताश और निराश कृष्ण अंत में राधा के वक्ष के गहराव में ही शांति पाते हैं :

और तुम तट पर बांह उठा-उठाकर कुछ कह रहे हो !
पर तुम्हारी कोई नहीं सुनता, कोई नहीं सुनता !
अंत में तुम हार कर लौट कर, थक कर
मेरे वक्ष के गहराव में
अपना चौड़ा माथा रखकर
गहरी नींद में सो गये हो...... (पृ० ७६)

राधा ही उदास, हताश और खिन्न कृष्ण का सम्बल बनती है। हताश कृष्ण राधा को पुनः याद करते हैं और पुकारते हैं। राधा इस पुकार पर दौड़ी आती है। वह इस बार कनु को अकेला निष्फल नहीं छोड़ना चाहती। वह उपालंभ देती हुई-सी कहती है :

सुनो मेरे प्यार !
प्रगाढ़ केलिक्षणों में अपनी अन्तरंग
सखी को तुमने बांहों में गूँथा
पर उसे इतिहास में गूँथने से हिचक क्यों गये प्रभु ?

इतिहास-निर्माण में असफल कृष्ण को सफलता पाने के लिए राधा की जरूरत महसूस होती है, क्योंकि 'बिना राधा के कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता कृष्ण के इतिहास का...राधा के बिना सब रक्त के प्यासे अर्थहीन शब्द!' राधा इसीलिए सब छोड़-छाड़कर दौड़ी चली आई है "ताकि कोई यह न कहे कि कृष्ण की अंतरंग केलि-सखी केवल कृष्ण के साँवरे तन के नशीले संगीत की लय बनकर रह गयी...।"

इस प्रकार कनुप्रिया राधा इस बार इतिहास-निर्माण में कृष्ण का साथ देने के लिए कृष्ण की प्रतीक्षा में खड़ी है कि कहीं 'इस बार इतिहास बनाते समय कृष्ण अकेले न छूट जाएं।'

'इतिहास' और 'समापन' के अंतिम खण्डों में 'इस प्रकार एक ओर तो

राधा के नारी-गौरव की प्रतिष्ठा की गई है और राधा के उपेक्षा-भाव को दूर किया गया है। कनुप्रिया राधा यह कदापि बर्दाश्त नहीं कर सकती कि वह केवल कृष्ण-विलासिनी समझी जाय। परंपरागत राधा के विपरीत वह अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग है। वह इतिहास-निर्माण में कृष्ण का साथ देने को प्रस्तुत है : कृष्ण की असफलता को सफलता में बदलने के लिए कृत-संकल्प है। वह अपने को सच्चे अर्थों में कृष्ण-पुरुष की शक्ति प्रमाणित करती है।

इसी संदर्भ में कवि धर्मवीर भारती ने दूसरी ओर नर-संहारक युद्ध के प्रति वितृष्णा जगाई है। ऐसे युद्ध को भला धर्म-युद्ध कैसे कहा जा सकता है जिसमें भीषण नर-संहार हो, जहाँ अठारह अक्षौहिणी सेनाएं युद्ध की ज्वाला में भस्म हो जाएँ! महायुद्ध की इसी विनाश-लीला को महाभारत के पौराणिक संदर्भ में आधुनिक भाव-बोध का विषय बनाया गया है।

'कनुप्रिया' की प्रस्तावना के दो पृष्ठों में कवि ने कहा है कि तन्मयता के सहज क्षणों का आग्रह ही 'कनुप्रिया' की मूल संवेदना है, 'कनुप्रिया की सारी प्रतिक्रियाएं उसी तन्मयता की विभिन्न स्थितियां हैं।' लेखक का कथन है कि राधा के चरम साक्षात्कार के तन्मयतापूर्ण क्षण का महत्त्व स्थापित करना ही 'कनुप्रिया' का उद्देश्य है। यह उद्धरण देखिए : "ऐसे तो क्षण होते ही हैं जब लगता है कि इतिहास की दुर्दान्त शक्तियां अपनी निर्मम गति से बढ़ रही हैं, जिनमें कभी हम अपने को विवश पाते हैं, कभी विक्षुब्ध, कभी विद्रोही और प्रतिशोधयुक्त, कभी वल्गाएं हाथ में लेकर गतिनायक या व्याख्याकार, तो कभी चुपचाप शाप या सलीब स्वीकार करते हुए आत्मबलिदानी उद्धारक या त्राता······लेकिन ऐसे भी क्षण होते हैं जब हमें लगता है कि यह सब जो बाहर का उद्वेग है, महत्त्व उसका नहीं है—महत्त्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात्कृत होता है—चरम तन्मयता का क्षण जो एक स्तर पर सारे बाह्य इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवान सिद्ध हुआ है, जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है—इस तरह कि समस्त बाह्य—अतीत, वर्तमान और भविष्य—सिमट कर उस क्षण में पुंजीभूत हो गया है, और हम हम नहीं रहे!

"प्रयास तो कई बार यह हुआ है कि कोई ऐसा मूल्यस्तर खोजा जा सके जिस पर ये दोनों ही स्थितियां अपनी सार्थकता पा सकें—पर इस खोज को कठिन पाकर दूसरे आसान साधन खोज लिए गए हैं·········इस तरह पहली (स्थिति) को भूलकर दूसरी और दूसरी से अब फिर पहली की ओर निरन्तर

हटते-बढ़ते रहना—धीरे-धीरे इस असंगति के प्रति न केवल अभ्यस्त हो जाना वरन् इसी असंगति को महानता का आधार मान लेना (यह घोषित करना कि अमुक मनुष्य या प्रभु का व्यक्तित्व ही इसीलिए असाधारण है कि वह दोनों विरोधी स्थितियां बिना किसी सामंजस्य के जी सकने में समर्थ है।)।

"लेकिन वह क्या करे जिसने अपने सहज मन से जीवन जिया है, तन्मयता के क्षणों में डूबकर सार्थकता पाई है, और जो अब उद्घोषित महानताओं से अभिभूत और आतंकित नहीं होता बल्कि आग्रह करता है कि वह उसी सहज की कसौटी पर समस्त को कसेगा। "ऐसा ही आग्रह है कनुप्रिया का।"

इसमें संदेह नहीं कि 'कनुप्रिया' में राधा के विश्वास-प्रेमपूर्ण तन्मयता के क्षणों का महत्त्व स्थापित किया गया है। कृष्ण चाहे जितने महान् हों, पर उनके तन्मयता के क्षणों और इतिहास-निर्माण-प्रयत्नों में सामंजस्य नहीं था। वह दूसरे बिन्दु (इतिहास-पुरुष) पर पहुंचकर पहले (तन्मयता के क्षण) बिन्दु को भुला देता है। वह राधा को भूल जाता है। इतिहास की भीड़-भाड़ में राधा और उसका प्यार अपरिचित छूट जाते हैं। इसी असंगति के कारण राधा के बिना—विश्वास-प्रेमपूर्ण तन्मयता के बिना—कृष्ण अपने इतिहास-निर्माण-प्रयत्न में विफल होते हैं। हताश और निराश कृष्ण को पुनः राधा की याद आती है। वह फिर विश्वास-प्रेमपूर्ण तन्मयता के क्षणों को खोजते हैं। इस बार राधा भी इतिहास-निर्माण में उनका साथ देने को प्रस्तुत है और इस प्रकार विश्वास-प्रेमपूर्ण आंतरिक तन्मयता और इतिहास-निर्माण के बाह्य संघर्ष का सामंजस्य अपेक्षित समझा गया है। अन्तर-बाह्य का समन्वय ही जीवन की सफलता का द्योतक हो सकता है। राधा इसी सामंजस्य के लिए अब कृष्ण की प्रतीक्षा में खड़ी होती है।

इस प्रकार 'कनुप्रिया' में कवि धर्मवीर भारती ने उपेक्षिता राधा के नारी-गौरव की प्रतिष्ठा की है, कृष्ण के तन्मयता के क्षणों और इतिहास-निर्माण के बाह्य-संघर्ष में सामंजस्य की आवश्यकता का दृष्टिकोण उपस्थित किया गया है और नर-संहारक भीषण युद्ध के प्रति वितृष्णा जगाई गई है। राधा और कृष्ण के चरित्रों में कवि ने परंपरागत संदर्भों में भी नवीन युगबोध-कारी मोड़ दिया है।

६ : 'कनुप्रिया' में प्रेम-चित्रण : श्रृंगार रस

'कनुप्रिया' श्रृंगार रस-प्रधान विचारोत्तेजक रचना है। राधा-कृष्ण के अद्‌भुत प्रेम का प्रकाशन ही इसका मुख्य उपजीव्य है। श्री धर्मवीर भारती ने राधा के प्रेम का चित्रण परंपरा के आधार पर करते हुए भी उसमें नवीनता का समावेश किया है। कृष्ण की प्रेम-चर्या वैचित्र्यपूर्ण थी, इसीसे राधा-कृष्ण का प्रेम लौकिक और अलौकिक दोनों धुरियों को छूता है। 'कनुप्रिया' में उसकी अलौकिकता का स्वरूप स्पष्ट उद्‌घाटित हुआ है। राधा और कृष्ण लौकिक नायिका-नायक नहीं हैं। वे तो परब्रह्म और उसकी शक्ति योगमाया या विष्णु और उनकी पत्नी लक्ष्मी के प्रतिरूप हैं, जो कृष्ण और राधा के अवतारी-रूप में ब्रज में अपनी प्रेम-लीला करते हैं। यह प्रेम पुरुष और प्रकृति का अथवा ब्रह्म और उसकी आदि शक्ति का शाश्वत प्रेम है। अतः अलौकिक है।

रूप-वर्णन : श्री धर्मवीर भारती ने राधा के प्रेम का चित्रण परंपरागत श्रृंगार रस-चित्रण-पद्धति पर तो नहीं किया, तथापि उसमें श्रृंगार रस के प्रायः सभी पक्ष नये ढंग से प्रकट हो गए हैं। स्पष्ट सीधा सौन्दर्य-चित्रण—नख-शिख-वर्णन इसमें नहीं है। फिर भी राधा और कृष्ण के सौन्दर्य का पर्याप्त आभास कुछ पंक्तियों से मिल जाता है। राधा और कृष्ण का प्रेम यद्यपि अलौकिक है, फिर भी उसके मूल में सौन्दर्य का आधार भी स्पष्ट है। राधा नव-यौवना है, चिर युवती है। अशोक-वृक्ष उसके जावक-रचित चरणों के स्पर्श से खिलता है। राधा का तन वेतसलता-सा कोमल है, उसकी देह चम्पकवर्णी है। उसकी मांग क्वांरी, उजली और पवित्र है। शोख चंचल विचुम्बित पलकें हैं, पतले मृणाल-सी गोरी अनावृत बाहें हैं, उलझे रूखे चन्दन-वासित केशों में पतली उजली चुनौती देती हुई क्वांरी मांग! चटुल मछलियों—जैसी उसकी चंचल आंखें! कृष्ण के चंदन-कसाव के बिना राधा की देहलता के बड़े-बड़े गुलाब धीरे-धीरे टीसते हैं। राधा प्रकृति-रूप है। निखिल सृष्टि उसी का लीलातन

है कृष्ण के आस्वादन के लिए। "उत्तुंग हिमशिखर राधा के ही रूपहली ढलान वाले गोरे कंधे हैं, जिन पर कृष्ण का गगन-सा चौड़ा और सांवला और तेजस्वी माथा टिकता है।" 'चांदनी में हिलोरें लेता हुआ महासागर राधा के ही निरावृत जिस्म का उतार-चढ़ाव है।' उमड़ती हुई मेघ-घटाएं राधा की ही बलखाती हुई वे अलकें हैं जिन्हें कृष्ण प्यार से बिखेर कर अक्सर राधा के पूर्ण विकसित चन्दन-फूलों को ढंक देता है। झरते हुए अजस्र-प्रवाही झरने राधा की ही स्वर्ण-वर्णी जंघाएं हैं। रात राधा की प्रगाढ़ता है, दिन उसकी हंसी, और फूल उसके स्पर्श और हरियाली उसका आलिंगन है। चन्द्रमा राधा के माथे का सौभाग्य-बिन्दु है। आकाश गंगा राधा के केश-विन्यास की शोभा है!

कृष्ण का श्यामल तन नील जलज-सा, गहरे नीले समुद्र-सा तरल-कोमल है। यमुना की साँवली गहराई का अथाह प्रसार मानो कृष्ण का अनावृत श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन है जो राधा के वेतसलता-से काँपते तन को पोर-पोर कसे हुए है! कनु की लम्बी चन्दन-बाहों में राधा को अपार शीतलता मिलती है।

पूर्वराग : सौन्दर्य का यह चित्रण स्थूल नहीं, सूक्ष्म है और अत्यन्त प्रभावकारी है। यही आकर्षण का केन्द्र है। कृष्ण (कनु) राधा के अंग-प्रत्यंग के लोभी हो जाते हैं। वह राधा के जिस्म के सितार के एक-एक तार में झंकार उठते हैं। राधा तो कृष्ण को कोई वन देवता समझकर करबद्ध प्रणाम करती है, पर कृष्ण कैसा छलिया निकला कि वह आँखें मूंद कर ध्यानमग्न बैठना तो उसका बहाना था, उसे तो राधा के प्रणाम की वह मुद्रा और हाथों की गति इस तरह भा गयी कि उसने राधा के एक-एक अंग की एक-एक गति को पूरी तरह बाँध लिया। राधा भी उस साँवरे समुद्र पर आसक्त हो जाती है। कृष्ण राधा को बाँसुरी की धुन में टेरते हैं, राधा मुग्ध मृगी-सी दौड़ी आती है। वह कृष्ण की रास में सम्मिलित होती है। पर जब कृष्ण उसे अंशतः आत्मसात् कर लौटा देते हैं तो राधा को पश्चात्ताप होता है : वह उस रास की रात कृष्ण के पास से क्यों लौट आई? जो चरण कृष्ण के वेणुवादन की लय पर कृष्ण के नील जलज तन की परिक्रमा देकर नाचते रहे, वे फिर घर की ओर उठ कैसे पाये! कण-कण अपने को देकर वह रीत क्यों नहीं गयी?'

राधा का प्रणय स्वकीया का प्रेम है या परकीया-प्रेम—यह प्रश्न कनु-

प्रिया-राधा के संदर्भ में निरर्थक है, क्योंकि कनुप्रिया अनन्त काल से कनु की लीला-सहचरी है। अपने ब्रज-लीला-रूप में भी कनु के साथ उसके अनन्त नाते हैं। वह कनु की सखी है, सहचरी है, प्रेमिका है। कनु उसका बन्धु है, सखा है, प्रिय है, रक्षक है। कनु राधा की क्वाँरी उजली माँग में आम्र-बौर भरकर उसे अपनी मंजरी-परिणीता बना लेता है। अतः कनुप्रिया राधा स्वकीया है।

आरंभ में कनुप्रिया तम के गाढ़े पर्दे में अपने जिस्म को छिपाकर कृष्ण से मिलती थी। वह कनु से कितना लजाती थी! अक्सर अपनी हथेलियों में अपना लाज से आरक्त मुँह छिपा लेती थी! पर हा! राधा को क्या मालूम था कि कनु उसके जिस्म के एक-एक तार से झंकार उठेगा। तब अपने को अपने से लाज कैसी! फिर भी राधा लज्जावश कृष्ण के हर आवाहन पर ठीक उसी समय नहीं आ पाती। 'एक मधुर भय, अनजाना संशय, एक आग्रह-भरा गोपन, एक निर्व्याख्या वेदना, उदासी उसे बार-बार चरम साक्षात्कार के—चरम सुख के—क्षणों में भी अभिभूत कर लेती हैं।' इसी कारण कई बार कनु राधा को टेरते रह जाते हैं, प्रतीक्षा करते रहते हैं, पर राधा उस समय नहीं आ पाती। वह कनु द्वारा आम्र-बौर से उसकी क्वांरी माँग भरे जाने का अर्थ नहीं समझ पाती।

जब कनु कदम्ब के नीचे बैठकर पोई की जंगली लतरों के पके फलों को तोड़कर, मसलकर, उनकी लाली से राधा के पांवों को महावर रचने के लिए अपनी गोद में रखता है तो राधा लाज से धनुष की तरह दोहरी हो जाती है और अपने पाँव पूरे बल से समेट कर खींच लेती है। वह लजीली मुग्धा है। बाद में एकान्त में वह कनु के हाथों-रची—अधबनी उन महावर-रेखाओं को चारों ओर देखकर धीमे-से चूम लेती है, बार-बार प्यार करती है!

कनुप्रिया राधा का प्यार तन्मयतापूर्ण है। वह दधि बेचने जाती है तो दधि के स्थान पर 'श्याम ले लो', 'श्याम ले लो' की आवाज लगाने लगती है।

राधा अपने कनु की 'मुंह लगी, जिद्दी, नादान मित्र' है। उसे नादानी में मजा आता है। वह कहती है: "मेरे हर बावलेपन पर कभी खिन्न होकर, कभी अनबोला ठान कर, कभी हँसकर तुम जो प्यार से अपनी बांहों में कसकर बेसुध कर देते हो, उस सुख को मैं छोड़ूं क्यों! करूँगी! बार-बार नादानी करूँगी!"

कृष्ण से न मिल पाने पर कनुप्रिया राधा अत्यन्त दुःखी होती है। वह बेचैन हुई कहती है : "आज इस निभृत एकांत में तुमसे दूर पड़ी हूं मैं : और इस प्रगाढ़ अंधकार में तुम्हारे चंदन कसाव के बिना मेरी देहलता के बड़े-बड़े गुलाब धीरे-धीरे टीस रह हैं।"

उद्दामता : मांसलता : कनुप्रिया राधा को गर्व है कि उसने अपने कनु को जो कुछ दिया है वह सब मौसम के पहले बौर की तरह 'अछूता था, ताजा था, सर्वप्रथम प्रस्फुटन था !' कनु और कनुप्रिया का प्रेम उद्दाम और मांसल भी है। यद्यपि कनु के लिए राधा का अंग-प्रत्यंग पगडण्डी-मात्र है जो चरम साक्षात्कार के क्षणों में रहता नहीं; रीत-रीत जाता है और इसीसे कनुप्रिया कहती भी है : "तुम्हारे शिथिल आलिंगन में मैंने कितनी बार इन सबको (अंगों को) रीतता हुआ पाया है। मुझे ऐसा लगा है जैसे किसी ने सहसा इस जिस्म के बोझ से मुझे मुक्त कर दिया है और इस समय मैं शरीर नहीं हूं··· मैं मात्र एक सुगंध हूं—आधी रात महकने वाले इन रजनीगंधा के फूलों की प्रगाढ़, मधुर गंध—आकारहीन, वर्णहीन, रूपहीन···।" पर कनु की इस अंतरंग केलि-सखी का प्यार मांसल भी है। इस उद्दाम केलि-क्रीड़ा के उत्तेजक रूप को इन पंक्तियों में देखिए : "और लो, वह आधी रात का प्रलय-शून्य सन्नाटा, फिर काँपते हुए गुलाबी जिस्मों, गुनगुने स्पर्शों, कसती हुई बांहों, अस्फुट सीत्कारों, गहरी सौरभ-भरी उसांसों और अंत में एक सार्थक शिथिल मौन से आबाद हो जाता है रचना की तरह, सृष्टि की तरह—।" कनु की सृजन-संगिनी बनकर कनुप्रिया राधा प्रगाढ़ और उद्दाम विलास में डूब जाती है। उसके इस उद्दाम प्यार से ही तो सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति संभव है, और जब वह गहरे प्यार के बाद थककर कनु की चन्दन बांहों में अचेत बेसुध सो जाती है, तो यह समस्त सृष्टि लय हो जाती है। चारों ओर गहरा अंधेरा और सूनापन छा जाता है और मजबूर होकर कनु फिर राधा को जगाते हैं—फिर उसी प्यार को दोहराने के लिए आधी रात जगाते हैं और फिर राधा के प्यार के साथ सृष्टि का उद्भव होता है। कनु और राधा के इस प्यार की अलौकिकता स्पष्ट है, पर इसकी अभिव्यक्ति में कवि ने शरीर-धर्म को त्यागा नहीं।

कनुप्रिया राधा कनु के इस प्यार को विचित्र और अनोखा कहती है। उसके संकेत रहस्यमय हैं। वह लौकिक अर्थों से परे अलौकिक है। वह शरीर-

धर्मी होता हुआ भी अत्यन्त सूक्ष्म है। कनु सम्पूर्णतः पाकर भी राधा को अछूता छोड़ देता है, उसका प्यार सम्पूर्णतः बांधकर भी सम्पूर्णतः मुक्त छोड़ देता है! राधा कहती भी है : "यह सारे संसार से पृथक् पद्धति का जो तुम्हारा प्यार है न, इसकी भाषा समझ पाना क्या इतना सरल है?"

'कनुप्रिया' के इस प्रेम-चित्रण की एक विशेषता यह है कि कवि धर्मवीर भारती ने छोटे-छोटे प्रणय-प्रसंगों का उल्लेख कर इसे अत्यन्त मधुर बना दिया है। 'तुम मेरे कौन हो' शीर्षक गद्यगीत में कई मधुर प्रणय-प्रसंग पाये जाते हैं। एक-दो उदाहरण देखिए : "अक्सर जब तुमने माला गूंथने के लिए कंटीले झाड़ों में चढ़-चढ़कर मेरे लिए श्वेत रतनारे करौंदे तोड़कर मेरे आंचल में डाल दिये हैं, तो मैंने अत्यन्त सहज प्रीति से गरदन झटका कर वेणी झुलाते हुए कहा है 'कनु ही मेरा एकमात्र अन्तरंग सखा है!' अक्सर जब तुमने दावाग्नि में सुलगती डालियों, टूटते वृक्षों, हहराती हुई लपटों और घुटते हुए धुएं के बीच निरुपाय, असहाय, बावली-सी भटकती हुई मुझे साहसपूर्वक अपने दोनों हाथों में फूल की थाली-सी सहेज कर उठा लिया और लपटें चीरकर बाहर ले आए, तो मैंने आदर, आभार और प्रगाढ़ स्नेह से भरे-भरे स्वर में कहा है : 'कान्ह मेरा रक्षक है, मेरा बंधु है, सहोदर है।'

कहना न होगा कि इस संदर्भ से कनु के प्रेम में औदात्त्य आ गया है। 'कनुप्रिया' के श्रृंगार-चित्रण में ऐसे प्रसंग और अंतिम 'इतिहास' और 'समापन' के प्रकरण से ही उदात्तता आई है।

गोपन और अवहित्था का यह प्रसंग भी कितना मार्मिक है : "पर जब तुमने दुष्टता से अक्सर सखी के सामने मुझे बुरी तरह छेड़ा है तब मैंने **खीझकर** आंखों में आंसू भरकर, शपथें खा-खाकर सखी से कहा है : 'कान्हा मेरा कोई नहीं है, कोई नहीं है। मैं कसम खाकर कहती हूं, मेरा कोई नहीं है।'

इस प्रकार कनु-राधा के संयोग-श्रृंगार में प्रचण्ड उद्दामता है, राधा की समर्पणकारी तन्मयता है, कनु द्वारा राधा को बचाने में वीरता और साहस है, मुग्धा राधा की लज्जा, अवहित्था, उत्सुकता, खीझ-रीझ, हर्ष, उत्साह आदि अनेक भावों का संचार हुआ है।

वियोग-पक्ष : कनुप्रिया का कनु इतिहास-निर्माण के लिए चला जाता है—राधा को छोड़कर, उसके तन्मयता के क्षणों को भुलाकर युद्ध और राज-

नीति के प्रपंच रचने चला जाता है। राधा विप्रलब्धा हो जाती है। विरह-व्यथा से उसका तन विगलित हो जाता है। कल तक जो शरीर कनु के संयोग में जादू था, सूरज था, वही अब बुझी हुई राख, टूटे हुए राग, डूबे हुए चांद, रीते हुए पात्र-सा हो गया है। जो तन खिला हुआ पुष्प था, वह अब जूड़े से गिरे हुए बेले-सा टूटा है, म्लान है, दुगना सुनसान है, बीता हुआ उत्सव-सा है, उठे हुए मेले-सा है।

कनुप्रिया राधा और उसका प्यार अपरिचित-सा छूट गया है। अब राधा के लिए केवल उन दिनों की स्मृति ही रह गई है। वह अब भी उन यादों में बसी हुई है, उन चंदन बांहों के छलावे में कसी हुई है। जिन अपनी रूखी अलकों में उसने समय की गति बांध ली थी, वे ही अब काले नागों की तरह उसे डस रही हैं।

कनुप्रिया राधा को दुःख इस बात का है कि उसका कनु उसे एकदम भुलाकर चला गया। इतिहास उससे उसके कनु को छीन ले गया। तो क्या वह कनु की केवल विलासिनी थी, क्या केवल केलि-क्रीड़ा की सहचरी थी? राधा कनु के प्रति प्रश्न भी करती है : "क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी, तुम्हारे लिए लीला-भूमि और युद्धक्षेत्र के अलंघ्य अन्तराल में ?"

राधा का मन स्वभावतः प्रश्न कर उठता है कि क्या वे तन्मयतापूर्ण प्यार-भरे दिन कोरी भावुकता थे, कल्पना थे, सपना थे ? यदि कृष्ण का यह इतिहास-निर्माण, यह युद्ध-आयोजन सत्य है, सार्थक है, महत्वपूर्ण है, तो क्या राधा का प्यार निरर्थक था, अयथार्थ था ? चाहे वह प्रगाढ़ प्यार सपना हो, पर एक बात राधा अब भी अनुभव करती है कि "इस आम की डाली के नीचे, जहां खड़े होकर कनु ने उसे बुलाया था, अब भी उसे आकर बड़ी शांति मिलती है।" राधा उन दिनों की स्मृति में डूब जाती है। राधा की अनमनी उंगलियां अनजाने ही उस आम के नीचे धूल में कनु का वह नाम लिख डालती हैं जो प्यार के गहनतम क्षणों में उसने स्वयं रखा था, और जिसे उन दोनों के सिवा और कोई नहीं जानता। राधा अपने मन को मसोस कर रह जाती है। वह सोचती है कि जिस छोने को उसने अपने आंचल में छिपाकर वर्षा से बचाया था, वह कितना महान् हो गया है! वह प्रश्न कर उठती है : "तुम्हारे महान् बनने में क्या मेरा कुछ टूट कर बिखर गया है कनु ?"

राधा की इतनी उपेक्षा क्यों ? इतने प्रगाढ़ प्यार, उद्दाम केलि-क्रीड़ा और

तन्मयता के बाद यह एकदम विस्मरण क्यों ? राधा का मन व्यंग्य, उपालंभ, खीझ और तर्क-वितर्क से भर जाता है । उसका कनु न्याय-अन्याय, धर्माधर्म, कर्त्तव्य-दायित्व वाला युद्ध आयोजित करता है ! अठारह अक्षौहिणी सेनाएं कुरुक्षेत्र में जमा होती हैं—भीषण नर-संहार के लिए ! 'अमंगल छाया' में राधा का यही व्यंग्य फूट पड़ा है । वह तर्क-वितर्क करती हुई 'एक प्रश्न' कर उठती है : मान लो मेरा प्रगाढ़ प्यार सपना था, तो क्या यह भीषण नर-संहार, युद्ध की अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएं, युद्ध-घोष, नभ को कंपाने वाला क्रंदन-स्वर, लाशों पर मंडराने वाले गृद्ध—सब सार्थक हैं, उचित हैं !

कनुप्रिया के इस वियोग-वर्णन में उसकी कल्पना और सपने का भी मार्मिक चित्रण हुआ है । राधा कल्पना करती है, स्वप्न देखती है कि उसका कनु इतिहास-निर्माण में असफल और निराश हो चुका है और अंत में थक कर खिन्न हो वह राधा के सुखद आंचल की याद करता है । वह कहती है : "अंत में तुम हारकर, लौटकर, थककर मेरे वक्ष के गहराव में अपना चौड़ा माथा रखकर गहरी नींद में सो गए हो······।" राधा को लगता है कि बहुत दिनों बाद उसके कनु को उसकी याद आई है और हताश और खिन्न कनु 'केवल एक भरी हुई पकी हुई गहरी पुकार' है, जो असफल इतिहास को त्यागकर राधा के लिए भटकती है ।

इस सुखद कल्पना से राधा खिल उठती है । वह कनु की पुकार पर पुन: सब छोड़-छाड़कर आ गयी है और जन्मान्तरों की अनन्त पगडंडियों के कठिनतम मोड़ पर खड़ी होकर कनु की प्रतीक्षा करती है, कि इस बार इतिहास बनाते समय कहीं कनु अकेला न छूट जाय !" राधा विनयपूर्वक प्रश्न करती है : "प्रगाढ़ केलि-क्षणों में अपनी अन्तरंग सखी को तुमने बांहों में गूंथा, पर उसे इतिहास में गूंथने से हिचक क्यों गए प्रभु ?"

कनुप्रिया राधा को विश्वास है कि उसके बिना कनु के इतिहास की कोई सार्थकता प्रमाणित नहीं हो सकती थी । अब वह इसीलिए इतिहास-निर्माण में कनु का साथ देने के लिए प्रतीक्षारत खड़ी है ताकि कोई यह न कहे कि कनु की अंतरंग केलिसखी केवल उसके सांवरे तन की विलासिनी बनकर रह गयी ! इस प्रकार भविष्य की सुखद कल्पनाओं में 'खोई राधा कनु की प्रतीक्षा में' खड़ी है । अब दर्द, व्यथा और वेदना के स्थान पर उसके मन में दृढ़ता है, उत्साह है, आशा है, उदात्त भावना है ।

इस प्रकार 'कनुप्रिया' में संयोग और वियोग-शृंगार की अनेक दशाएं होते हुए भी उसका स्वरूप परंपरागत नहीं है। न यहां प्रकृति का उद्दीपन है, न नायिका-भेद है, न पाति-संदेश है, न वियोग-अन्तर्गत व्याधि जड़ता, मूर्च्छा आदि परंपरागत पूरी दस दशाएं हैं, न ऊहात्मक विरह-चित्रण है, न मान-मनुहार है। संयोग का चित्रण वियोग की अपेक्षा अधिक व्यापक और बहुरंगी है। राधा के प्रेम में तन्मयता और गांभीर्य है। वह सूरादि मध्यकालीन कृष्ण-कवियों की राधा के समान भोली-भाली होते हुए भी विवेकशीला और तार्किक है। उसका प्रेम अंत में औदात्त्य की भावभूमि को भी छू लेता है। उसमें अलौकिकता स्पष्ट है। अंत में भी राधा कनु की चिर केलि-सखी के नाते ही प्रतीक्षारत खड़ी होती है। इतिहास और युद्ध की भीड़भाड़ में भले ही वह और उसका गाढ़ा प्यार अपरिचित-से छूट गए हैं, पर जन्म-जन्मान्तरों की पगडण्डी पर कनु अकेला इतिहास-निर्माण कैसे कर सकता है, और उसके बिना कैसे सफल हो सकता है! वह इस बार न केवल कनु की केलि-सखी और सृजन-संगिनी बनी रहेगी, अपितु उसके इतिहास-निर्माण में भी पूरा साथ देगी और कनु को विफलता से, सूनेपन से बचायगी। उसका और कनु का नाता अटूट है।

७ : भाषा-शैली : कलात्मक अभिव्यक्ति

'कनुप्रिया' भावुक कवि की कलात्मक कृति है। श्री धर्मवीर भारती ने इसमें अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा का प्रयोग करके उसमें अपूर्व साहित्यिकता उत्पन्न की है। शैली मुक्तछन्द की गद्यगीत शैली है, जिसका गेय महत्त्व तो नहीं है, पर पाठ्य महत्व अवश्य है। शब्दों, वाक्यों की संरचना अत्यन्त व्यवस्थित है जिसके कारण भाषा में एक भावानुरूप प्रवाह पाया जाता है। भावुकता के कारण समस्त रचना गद्य-काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करती है। 'कनुप्रिया' के काव्य-रूप पर हम आगे विचार करेंगे, यहां उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति के साधनों पर प्रकाश डालते हैं।

अलंकार-योजना : 'कनुप्रिया' के कलापक्ष का विश्लेषण करते हुए सबसे पहले उसके स्वाभाविक अलंकरण और लाक्षणिकता पर ध्यान जाता है। इस रचना में अलंकारों का बड़ा स्वाभाविक, कलात्मक और प्रभावी प्रयोग हुआ है। अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकार अधिक पाये जाते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास, वीप्सा, श्लेष, यमक आदि यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं। व्यस्त रूपक और मध्यानुप्रास का सुन्दर मिश्रण इन पंक्तियों में देखिए :

> यह जो अकस्मात्
> आज मेरे जिस्म के सितार के
> एक-एक तार में तुम झंकार उठे हो—

यहां 'जिस्म के सितार' में व्यस्त रूपक है। पंक्तियों के बीच में, 'तार' और 'आर' की आवृत्ति मध्यतुक या मध्यानुप्रास प्रकट करती हुई भाषा में कितना प्रवाह और लालित्य भर रही है! 'झंकार उठे हो' में लाक्षणिकता स्पष्ट है और 'तार' में रूपकातिशयोक्ति पाई जाती है।

कहीं कहीं सादृश्य के स्थान पर प्रभाव-साम्य उत्पन्न किया गया है।

रूपक के ये कलात्मक प्रयोग ऐसे ही हैं : "राधन् ! तुम्हारी शोख़ चंचल विचुम्बित पलकें तो पगडंडियां मात्र हैं : जो मुझे तुम तक पहुंचा कर रीत जाती हैं।" उपमा और रूपक : "राधन् ! ये पतले मृणाल-सी तुम्हारी गोरी अनावृत बाहें पगडंडियां मात्र हैं।"

उपमालंकार के रूप में अनूठी उपमान-योजना की तो भारती ने अद्भुत क्षमता प्रकट की है। उपमा, उत्प्रेक्षा और अपह्नुति का त्रिवेणी-संगम इन पंक्तियों में कितना बढ़िया है ! —"**यमुना के नीले जल में मेरा यह वेतसलता-सा कांपता तन-बिम्ब, और उसके चारों ओर सांवली गहराई का अथाह प्रसार जानते हो कैसा लगता है—मानो यह यमुना की सांवली गहराई नहीं है, यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर मुझे चारों ओर से कण-कण रोम-रोम अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में पोर-पोर कसे हुए हो !**"

'वेतसलता-सा कांपता तन-बिम्ब' में उपमा, "मानो यह यमुना की साँवली गहराई नहीं है, यह तुम हो·····" में सापह्न-उत्प्रेक्षा (अपह्नुति और उत्प्रेक्षा) का भव्य उदाहरण है। इस उपमान-योजना का प्रयोग बढ़िया बिम्बात्मक है।

'नील जलज-तन' अर्थात् नीलकमल जैसा तन में लुप्तोपमा का प्रयोग परम्परागत ही है। पर मालोपमा के ये प्रयोग बहुत भव्य हैं जो कवि की कल्पना-शक्ति के परिचायक हैं।

विप्रलब्धा राधा के म्लानमुख और तन के लिए ये प्रयोग देखिए "बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चांद, रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण-सा—मेरा यह जिस्म······आज वह जूड़े से गिरे हुए बेले-सा टूटा है, म्लान है,··· बीते हुए उत्साह-सा, उठे हुए मेले-सा'······'बुझी हुई राख में छिपी चिंगारी-सा, रीते हुए पात्र की आखीरी बूंद-सा, पाकर खो देने की व्यथा-भरी गूंज-सा' मूर्त्त और सूक्ष्म उपमानों की कैसी प्रभावी योजना है !

इसी प्रकार बिम्बात्मक उपमा इन पंक्तियों में है—"मंत्र-पढ़े बाण-से छूट गए तुम तो कनु, शेष रही मैं केवल काँपती प्रत्यंचा-सी !" 'सेतु-जिस्म' में भी लुप्तोपमा के रूप में अच्छी कल्पना की गई है।

उपमान-योजना में मूर्त्त-अमूर्त्तविधान भी अनूठा है। अमूर्त्त का मूर्त्त उपमा-प्रयोग देखिये : "भय, संशय, गोपन, उदासी ये सभी ढीठ, चंचल, सरचढ़ी सहेलियों की तरह मुझे घेर लेती हैं।"

बिम्बात्मक उपमाओं के प्रयोग में भारती ने अपूर्व कुशलता का परिचय दिया है। कुछ उदाहरण और देखिए : 'मांग-सी उजली पगडंडी', 'मैं लाज से धनुष की तरह दोहरी हो जाती हूं।' 'चम्पक वर्णी देह', 'तुमने असफल इतिहास को जीर्णवसन की भाँति त्याग दिया है।' 'अनन्त प्रदीप्त सूर्यों को कोहरे की गुफाओं में पंख टूटे जुगनुओं की तरह रेंगते देखा है।' 'भय···हिम शिखरों पर, महासागरों पर···कोहरे की तरह फन फैलाकर गुंजलक बाँधकर बैठ गया है।' आदि।

संकेत और प्रतीकात्मक अर्थ-योजना भी सादृश्य के आधार पर कई जगह की गई है, जैसे कनु अर्द्धोन्मीलित कमल भेजता है तो राधा समझ जाती है कि कनु ने उसे संझा बिरियां बुलाया है। जब वह अगस्त्य के दो उजले कटावदार फूल भेजता है तो राधा समझ जाती है कि कनु उसके कटावदार पांवों में महावर लगाना चाहता है! आम के बौर का संकेतार्थ है कि कनु राधा की उजली मांग आम्र-बौर से भरना चाहता है।

सापह्नु उत्प्रेक्षा का एक और मार्मिक उदाहरण देखिए : "मुझे ऐसा लगा है जैसे किसी ने सहसा इस जिस्म के बोझ से मुझे मुक्त कर दिया है और इस समय मैं शरीर नहीं हूं······मैं मात्र एक सुगंध हूं—आधी रात महकने वाले इन रजनीगंधा के फूलों की प्रगाढ़, मधुर गंध—आकारहीन, वर्णहीन, रूपहीन······।"

भ्रांतिमान का भी एक उदाहरण मिला है : "जो पानी भरने जाती है तो भरे हुए घड़े में अपनी चंचल आंखों की छाया देखकर उन्हें कुलेल करती चटुल मछलियां समझकर बार-बार सारा पानी ढलका देती है।"

इन पंक्तियों में उत्प्रेक्षा का ही कल्पनामय कलात्मक प्रयोग है : "कौन है जिसे तुमने झंझा के उद्दाम स्वरों में पुकारा है······कौन है जिसके लिए तुमने महासागर की उत्ताल भुजाएं फैला दी हैं।"

कहीं-कहीं विरोधाभास का चमत्कार भी पाया जाता है : १. "वह जिसे भी रिक्त करना चाहता है, उसे सम्पूर्णता से भर देता है।" २. "कि वह (मांग) भर कर भी ताजी क्वांरी और रीती छूट जाए।" ३. "मुझे अंशतः ग्रहण कर सम्पूर्ण बनाकर लौटा देते हो।" ४. "वह (नादानी) भी एक दिन हो-हो कर रीत जायगी।" ५. "आधीरात का प्रलय-शून्य सन्नाटा······अंत में

एक सार्थक शिथिल मौन से आबाद हो जाता है।

कहीं-कहीं **विशेषण-विपर्यय और मानवीकरण** के प्रयोग भी पाये जाते हैं। कुछ उदाहरण देखिए : 'तीसरे पहर की अलसाई वेला' में वेला का मानवीकरण है। यह प्रकृतिगत मानवीकरण है। भाव का मानवीकरण इन पंक्तियों में सुन्दर है : "वह अस्वीकृति ही अटूट बंधन बनकर मेरी प्रणाय-बद्ध अंजलियों में कलाइयों में इस तरह लिपट जायगी कि कभी खुल ही नहीं पायेगी।" यह लाक्षणिक प्रयोग का भी उत्तम उदाहरण है। 'अनमनी उंगलियां' में विशेषण-विपर्यय है। अनमनी उंगलियां नहीं, अनमने व्यक्ति की उंगलियां हैं। इसी प्रकार 'ढलते सूरज की उदास कांपती किरणें तुम्हारे माथे के मोरपंखों से बेबस विदा मांगने लगीं' में मानवीकरण और विशेषण विपर्यय दोनों का सुन्दर चमत्कार है। 'भय' अमूर्त्त भाव का मानवीकरण इस पंक्ति में भी सुन्दर है : "और क्या यह भय की ही कांपती उंगलियां हैं जो मेरे एक-एक बंधन को शिथिल करती जा रही हैं।"

शब्द-चयन की कुशलता विशेषणों और सम्बोधनों के चयन में खूब दिखाई देती है। कनु के लिए जो सम्बोधन और विशेषण प्रयुक्त किये गए हैं, वे अत्यन्त सार्थक, प्रभावी और औचित्यपूर्ण हैं। सांवरी जमना के जल की कनु के निरावरण तन से उत्प्रेक्षा करते हुए कनु के लिए 'मेरे सांवरे!' सम्बोधन का प्रयोग किया गया है जो अत्यन्त उपयुक्त है। इसी प्रकार जिस्म के तार-तार में झंकार उठने वाले कनु को 'स्वर्णिम संगीत' कहा गया है। कनु के लिए 'मेरे प्यार!', 'मेरे प्राण!', 'साँवरे समुद्र', 'मेरे सहयात्री!', 'लीला-बंधु', 'चंदन', मेरे अधैर्य', 'मेरे इच्छामय', 'मेरे स्रष्टा', 'मेरे असमंजस,' 'मेरे उत्तर', 'मेरे लीलामय', आदि सम्बोधन और विशेषण बहुत सार्थक हैं। कहीं-कहीं लाक्षणिक विशेषण मानवीकरण और परिकर अलंकारों का उदाहरण बने हुए हैं, जैसे 'आहत प्यार' में एक ओर तो भाव (प्यार) का मानवीकरण है, दूसरे, साथ ही आहत शब्द की लाक्षणिकता के कारण यह विशेषण-चमत्कार परिकर अलंकार बन गया है। कनु के लिए 'मुझे नित नये शिल्प में ढालने वाले' विशेषण और सम्बोधन भी अत्यंत सार्थक है।

शब्दालंकारों में अनुप्रास और वीप्सा का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। वर्णगत व शब्दगत अनुप्रास तो पंक्ति-पंक्ति में है जिसके कारण समस्त पदावली

कोमलकांत हो गई है और भाषा में अविरल प्रवाह आ गया है। वर्णों, शब्दों और पदों तथा वाक्यों की आवृत्ति से भारती ने भाषा-शैली में एक मोहकता और भावात्मक-कलात्मक प्रवाह उत्पन्न कर दिया है। ऐसे शब्द-चमत्कार को परंपरागत शब्दालंकारों में से किसमें गिना जाय, यह प्रश्न उठ जाता है। उदाहरण देखिए : यहाँ 'और' की हर वाक्य में आवृत्ति अनुप्रास, वीप्सा आदि अलंकारों के साथ भाषा में प्रवाह और भावात्मकता उत्पन्न कर रही है :

और कण्ठ सूख रहा है
और पलकें आधी मुंद गयी हैं
और सारे जिस्म में जैसे प्राण नहीं हैं
मैंने कसकर तुम्हें जकड़ लिया है
और जकड़ती जा रही हूं
और निकट, और निकट
कि तुम्हारी सांसें मुझमें प्रविष्ट हो जायं
तुम्हारे प्राण मुझमें प्रतिष्ठित हो जायं

उपर्युक्त पंक्तियों में 'और' की बार-बार आवृत्ति शैली में भावात्मक प्रवाह उत्पन्न कर रही है। इसे कौन-सा शब्दालंकार कहा जाय ? इसे संयोजक का आलंकारिक प्रयोग ही कहना चाहिए। 'और निकट' की आवृत्ति वीप्सा अलंकार है। तुम्हारी, तुम्हारे, 'मुझमें', 'हो जायं' की आवृत्तियां भी पुनरावृत्ति का दोष नहीं, आलंकारिक गुण प्रतीत होती हैं। समस्त रचना में भारती ने शब्दों की इस आवृत्ति से काम लिया है। 'जिस्म में जैसे' आदि में 'ज' की आवृत्ति परंपरागत वर्ण-अनुप्रास ही है। परंपरागत छेक, वृत्त्य आदि अनुप्रास-प्रयोग की बजाय भारती ने शब्दों और पदों की आवृत्ति के ऐसे ही नये कलात्मक-भावात्मक प्रयोग किये हैं। वीप्सा के परंपरागत प्रयोगों की भी कमी नहीं। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं : 'तन में कांप-कांप जाता है', 'वह आज कितना, कितना, कितना महान हो गया है।' 'हो-होकर रीत जायगी', बार-बार, भरे-भरे, टूट-टूट आदि। वर्ण-आवृत्तियों से अधिक शब्द-आवृत्तियों का मोहक जाल सारी रचना में पाया जाता है।

लाक्षणिक प्रयोगों की 'कनुप्रिया' में बहुलता है। सच तो यह है कि कवि ने अभिधा से बहुत कम काम लिया है। कई लाक्षणिक प्रयोग प्रचलित मुहा-

वरों के रूप में भी प्रकट हुए हैं। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, : 'धूल में मिली हूँ', 'धरती में गहरे उतरी हूं', 'रेशे-रेशे में सोई हूं', 'पंख पसार कर उड़ूंगी', 'झंकार उठे हो', 'मुझ में छिपे सो रहे थे', 'अस्वीकृति······लिपट जायेगी कि कभी खुल ही नहीं पायेगी।' 'बाहों के छलावे में कसी हुई', 'दर्द से पके हुए', 'हाय मुझी पर पग रख मेरी बाहों से इतिहास तुम्हें ले गया।' 'हवा मेरी रूखी अलकों से खेल करती है', 'तुम्हारे महान बनने में क्या मेरा कुछ टूट कर बिखर गया है कनु!' आम के बौरों का चारों ओर मायाजाल फैलाना, 'मेरा जाल में उलझकर बेबस आना', कण-कण अपने को तुम्हें देकर **रीत क्यों नहीं गयी ?**' 'वह मेरी तुर्शी है जिसे तुम विशेष प्यार करते हो।' 'कितनी बार तुममें डूब-डूब कर कहा है।' 'अंधेरे में भी दृष्टियां जाग उठी हैं', 'हर शब्द को अंजुरी बनाकर बूंद-बूंद तुम्हें पी रही हूँ।' आदि।

मुहावरे : 'हाथ को हाथ न सूझना', 'गगनचुम्बी', मुंहलगी आदि दो-चार परंपरागत मुहावरे भी कहीं-कहीं दिखाई दे जाते हैं। पर सच यही है कि भारती ने परंपरागत मुहावरों या लोकोक्तियों का प्रयोग न करके सुन्दर लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा अपनी भाषा को सशक्त बनाया है।

व्यंग्य-वक्रता-भरे शब्द-प्रयोग भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं। 'कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व······**मैंने भी गली-गली सुने हैं ये शब्द**' में 'गली-गली सुने हैं' की व्यंग्य-ध्वनि बड़ी मार्मिक है।

प्रतीक-योजना : 'कनुप्रिया' में कुछ प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ है। 'इतिहास' खण्ड का 'समुद्र-स्वप्न' शीर्षक गद्यगीत तो प्रतीक शैली में ही रचा गया है। इसमें 'समुद्र', 'सीपियां', 'लहरें', 'मछलियां', आदि सब प्रतीक हैं। 'समुद्र' संसार का, 'सीपियां' असहाय और पीड़ित मानवता की, 'लहरें' 'विक्षुब्ध भावनाओं की प्रतीक हैं। 'नारियल के कुंज' आशा और हर्षोल्लास के प्रतीक हैं तो 'बूढ़ा पीपल' निराशा और उदासी का—"समुद्र के किनारे नारियल के कुंज हैं, और तुम एक बूढ़े पीपल के नीचे चुपचाप बैठे हो।" कनु और राधा के ब्रह्म और शक्ति-रूप प्रतीक तो परंपरागत हैं ही।

बिम्ब-विधान : ऊपर उपमान-योजना—विशेषतः बिम्बात्मक उपमा-विधान के उदाहरण देते हुए हम भारती की बिम्ब-विधान-क्षमता पर प्रकाश डाल चुके हैं। भाषा का चित्रात्मक प्रयोग सर्वत्र पाया जाता है। कहीं बिम्ब-

विधान उपमा-आश्रित है, कहीं रूपक के रूप में, कहीं उत्प्रेक्षा के रूप में तो कहीं बिना किसी अलंकार-योजना के ही वस्तु-विधान बिम्बात्मक है। अनलंकृत बिम्ब-विधान का निम्न उदाहरण देखिए :

पर मुझे देखो कि मैं उस समय भी तो माथा नीचाकर
इस अलौकिक सुहाग से प्रदीप होकर
माथे पर पल्ला डालकर
झुककर तुम्हारी चरण-धूलि लेकर
तुम्हें प्रणाम करने—
नहीं आयी, नहीं आयी, नहीं आयी ! (पृष्ठ २५)

उपर्युक्त पंक्तियों में नववधू का कैसा सुन्दर बिम्ब प्रकट हुआ है ! उपमा-गर्भित बिम्ब का एक उदाहरण यहां भी दिया जाता है : "अक्सर जब तुमने दावाग्नि में, सुलगती डालियों, टूटते वृक्षों, हहराती हुई लपटों और घुटते हुए धुएं के बीच निरुपाय, असहाय, बावली-सी भटकती हुई मुझे साहसपूर्वक अपने दोनों हाथों में फूल की थाली-सी सहेजकर उठा लिया और लपटें चीर कर बाहर ले आये……।"

रूपक के चित्रात्मक प्रयोग के रूप में बिम्ब-विधान की सुन्दर छटा इन पंक्तियों में है : "अगर ये उत्तुंग हिमशिखर मेरे ही—रूपहली ढलान वाले गोरे कंधे हैं—जिन पर तुम्हारा गगन-सा चौड़ा और सांवला और तेजस्वी माथा टिकता है, अगर यह चांदनी में हिलोरें लेता हुआ महासागर मेरे ही निरावृत जिस्म का उतार-चढ़ाव है, अगर ये उमड़ती हुई मेघ-घटाएं मेरी ही बेल खाती हुई वे अलकें हैं जिन्हें तुम प्यार से बिखेर कर अक्सर मेरे पूर्ण विकसित चन्दन-फूलों को ढंक देते हो, अगर सूर्यास्त वेला में पच्छिम की ओर झरते हुए ये अजस्र प्रवाही झरने मेरी ही स्वर्ण-वर्णी जंघाएं हैं……।"

सच तो यह है कि रचना की समस्त अभिव्यक्ति बिम्बात्मक और चित्रात्मक है। आलिंगन-कसाव का यह बिम्ब भी उपमा योजना से कितना भव्य हो गया है: 'और यह मेरा कसाव निर्मम है, और अंधा, और उन्माद भरा; और मेरी बांहें नागवधू की गुंजलक की भांति कसती जा रही हैं और तुम्हारे कंधों पर, बांहों पर, होठों पर नागवधू की शुभ्र दंत-पंक्तियों के नीले-नीले चिह्न उभर आये हैं।"

जिस्म के लिए सीपी की यह उपमा कितनी चित्रात्मक है : "और मेरा यह सारा हलका गुलाबी, गोरा, रूपहली, धूपछांव वाली सीपी-जैसा जिस्म।" इसी प्रकार विरह-दग्धा राधा के जिस्म का यह उपमायुक्त बिम्बात्मक चित्रण बड़ा मार्मिक है :

मेरा यह जिस्म—
टूटे खण्डहरों के उजाड़ अन्तःपुर में
छूटा हुआ एक साबित मणि जटित दर्पण-सा—
आधीरात दंश भरा बाहुहीन
प्यासा सर्पीला कसाव एक
जिसे जकड़ लेता है
अपनी गुँजलक में : (पृष्ठ ५६)

उपदेश देते हुए कनु की कल्पना का बिम्ब इन पंक्तियों में कितना सजीव उतर आया है :

—तुम्हारा सांवरा लहराता हुआ जिस्म
तुम्हारी किंचित् मुड़ी हुई शंख-ग्रीवा
तुम्हारी उठी हुई चन्दन-बाहें
तुम्हारी अपने में डूबी हुई
अधखुली दृष्टि
× × ×
और तुम्हारे जादू-भरे होठों से
रजनीगंधा के फूलों की तरह टप्-टप् शब्द झर रहे हैं
एक के बाद एक के बाद एक…… (पृष्ठ ७२-७३)

अंतिम पंक्तियों में उपमा का सुन्दर प्रयोग भी है।

भावानुरूप शैली-निर्माण की क्षमता भी 'कनुप्रिया' के लेखक में पाई जाती है। भावावेश के स्थलों पर भावावेशमय शैली, व्यंग्य के अवसर पर सुन्दर व्यंग्य शैली, सम्बोध-शैली, संवाद-शैली, तर्क-शैली, ओजपूर्ण-शैली, माधुर्य-व्यंजक शैली आदि शैलियों के भिन्न-भिन्न रूप पाये जाते हैं। व्यंग्य-शैली इन पंक्तियों में देखिए :

आज इस पथ से अलग हटकर खड़ी हो
बावरी !

लताकुंज की ओट
छिपा ले अपने आहत प्यार को
आज इस गांव से
द्वारिका की युद्धोन्मत्त सेनाएं गुजर रही हैं (पृ० ६६)

× × ×

उदास क्यों होती है नासमझ
कि इस भीड़-भाड़ में
तू और तेरा प्यार नितान्त अपरिचित
छूट गए हैं,
गर्व कर बावरी !
कौन है जिसके महान् प्रिय की
अठारह अक्षौहिणी सेनाएं हों ? (पृ० ६८)

भावावेश की भावावेगपूर्ण शैली का एक नमूना देखिए :

मेरे अधखुले होठ कांपने लगे हैं
और कण्ठ सूख रहा है
और पलकें आधी मुंद गयी हैं
और सारे जिस्म में जैसे प्राण नहीं हैं
मैंने कसकर तुम्हें जकड़ लिया है
और जकड़ती जा रही हूं
और निकट, और निकट
कि तुम्हारी सांसें मुझमें प्रविष्ट हो जायं
तुम्हारे प्राण मुझमें प्रतिष्ठित हो जायं
तुम्हारा रक्त मेरी मृतप्राय शिराओं में प्रवाहित होकर
फिर से जीवन संचरित कर सके—
और यह मेरा कसाव निर्मम है
और अंधा, और उन्माद भरा; ......" (पृ० ५३)

भावावेश में शब्दों, वाक्यों की आवृत्ति बड़ी स्वाभाविक है : "और तुम्हारा सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ हूं केवल मैं ! केवल मैं !! केवल मैं !!!"

जहां अधिकांशतः 'कनुप्रिया' में सरल-सरस भाषा-शैली का प्रयोग हुआ

है, वहां अत्यन्त कलात्मक और अलंकृत शैली का यह उदाहरण भी द्रष्टव्य है:

तुम्हारे चंदन-कसाव के बिना मेरी देहलता के
बड़े-बड़े गुलाब धीरे-धीरे टीस रहे हैं
और दर्द उस लिपि के अर्थ खोल रहा है
जो तुमने आम्रमंजरियों के अक्षरों में
मेरी मांग पर लिख दी थी। (पृ० ३२)

सम्बोध-शैली का प्रयोग तो समस्त रचना में है। वस्तुतः राधा की भावात्मक प्रतिक्रियाएं कनु के प्रति सम्बोधन-रूप में ही प्रकट हुई हैं। सम्बोध-शैली कई रूपों में, कई भावों में प्रकट हुई है। समूची रचना इसी शैली में है। इसका अत्यन्त स्वाभाविक और मार्मिक प्रयोग 'कनुप्रिया' में हुआ है। विविध सम्बोधनों तथा 'न', 'लो' आदि शब्दों के प्रयोग से इसमें बड़ी स्वाभाविकता आ गई है। एक-दो उदाहरण ही दिये जा सकते हैं :

सुनो मेरे प्यार !
तुम्हें मेरी जरूरत थी न, लो मैं सब छोड़कर आ गयी हूँ।
× × ×
तुमने मुझे पुकारा था न !
मैं पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर
तुम्हारी प्रतीक्षा में
अडिग खड़ी हूँ, कनु मेरे !

मुक्त छंद-शैली : 'कनुप्रिया' में मुक्त छन्द-शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इस छन्द-शैली की विशेषताओं पर हम आगे विस्तृत प्रकाश डाल रहे हैं। यहां इतना कहना पर्याप्त है कि 'कनुप्रिया' में भारती ने भावानुरूप विविध शैलियों का सफल प्रयोग किया है।

भाषा-शैली की कोमलता और मधुरता में कहीं-कहीं बोल-चाल के प्रादेशिक शब्दों ने भी मिठास घोलने में योग दिया है। 'संझा बिरियां', 'घनी छांव', 'छितवन की छांह', 'छोटे-से छोने', 'अंजुरी भर-भर', 'रीत जाती हैं', 'नगर-डगर', 'बावरी', 'पोर-पोर कसे हुए' आदि शब्द-प्रयोग ऐसे ही हैं।

भाषा अत्यन्त सरल और स्वाभाविक है। तत्सम शब्दों का क्लिष्ट प्रयोग कहीं नहीं दिखाई देता। तद्भव सरल शब्दों की बहुलता है। बीच-बीच में बोलचाल के उर्दू-फारसी शब्द भी स्वाभाविक ही प्रतीत होते हैं, जैसे नादानी, जिद्दी, नादान, तुर्शी, जिस्म, गुमान, 'आबाद हो जाता है', 'तमाम', 'सिर्फ', 'आखिरी', खुद, अलावा आदि।

इस प्रकार 'कनुप्रिया' में भारती ने सरल, सरस, कोमलकांत भाषा-शैली का कलात्मक साहित्यिक प्रयोग किया है। उसकी अभिव्यक्ति शैली में लाक्षणिकता है, स्वाभाविक कलात्मक अलंकरण है, चित्रात्मकता और बिम्ब-योजना है तथा है भावानुरूप शैलियों का वैविध्य !

८ : मुक्त छन्द-शैली और कनुप्रिया

कविता और छन्द का अटूट सम्बंध है। प्राचीनकाल से आधुनिक युग के पूर्व तक कविता में छन्दों की अनिवार्यता का सिद्धांत मान्य रहा है। वैदिक साहित्य में जो शास्त्रमुक्त छन्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग होता था, वह भी होते छन्द ही थे जिनमें स्वर-लय का एक व्यवस्थित क्रम संगीतात्मकता उत्पन्न करता था। आधुनिक युग में निराला ने सर्वप्रथम स्वच्छन्द छन्द की बात संभवतः अंग्रेजी या बंगला के प्रभाव से हिन्दी में चलाई। हिन्दी में छन्द-प्रयोग की नवीनता पर सर्वप्रथम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बल दिया था। उन्होंने परम्परागत मात्रिक छन्दों के साथ-साथ संस्कृत के वर्ण-वृत्तों को अपनाने की ही सलाह नहीं दी, अपितु अतुकांत छन्दों पर भी बल दिया। पर द्विवेदी जी का दृष्टिकोण भी परम्परा पर ही आधृत था।

निराला ने सर्वप्रथम कविता की मुक्ति की आवाज बुलंद की। निराला ने कविता में शास्त्रबद्ध छन्द का महत्त्व गौण माना और शास्त्रबद्ध छन्दों के बंधन को कविता के स्वतंत्र निर्माण में बाधक बताया। उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला में प्रयुक्त मुक्त छन्द के प्रयोग पर बल दिया। वस्तुतः निराला ने कविता में छन्द का निषेध नहीं किया था, केवल शास्त्रबद्ध छन्दों की अनिवार्यता का विरोध किया था। निराला ने बंधन को अस्वीकारा, छन्द या मुक्त छन्द अर्थात् स्वतः निर्मित स्वतः छन्द (स्वच्छन्द) छन्द को नहीं। निराला का तात्पर्य यही था कि कवि की अनुभूति स्वतः अपने आप जिस प्रवाहात्मक स्वतः व्यवस्थित रूप में प्रकट हो जाती है, वह मुक्त छन्द बन जाता है। निराला के विचार संक्षेप में उद्धृत किये जाते हैं :

"मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दों के

शासन से अलग हो जाना।······मुक्त काव्य (मुक्त छन्द-काव्य) कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।

"स्वच्छन्द छन्द में 'तार' और 'गार' के अनुप्रासों की कृत्रिमता नहीं रहती—वहां कृत्रिम तो कुछ है ही नहीं। यदि कारीगरी की गई, मात्राएँ गिनी गईं, लड़ियों के बराबर रखने पर ध्यान रखा गया तो इतनी बाह्य विभूतियों के गर्व में स्वच्छन्दता का सरल सौन्दर्य, सहज प्रकाशन, निश्चय है कि नष्ट हो जाता है। पंत जी ने जो लिखा है कि स्वच्छन्द छन्द ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत पर चल सकता है, यह एक बहुत बड़ा भ्रम है। स्वच्छन्द छन्द में आर्ट ऑफ म्यूजिक (Art of music) नहीं मिल सकता, वहां है आर्ट ऑफ रीडिंग (Art of reading); वह स्वर-प्रधान नहीं, व्यंजन-प्रधान है।······मुक्त काव्य में बाह्य समता दृष्टिगोचर नहीं हो सकती, बाहर केवल पाठ से उसके प्रवाह में जो सुख मिलता है, उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध धारा प्राणों को सुख-प्रवाह-सिक्त निर्मल किया करती है, वही इसका प्रमाण है।" (पंत और पल्लव)

"मुक्त छन्द तो वह है, जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है।······ उसमें कोई नियम नहीं। केवल प्रवाह कवित्त छन्द का-सा जान पड़ता है। ······मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम-राहित्य उसकी मुक्ति।······

"हिन्दी में मुक्त काव्य कवित्त छन्द की बुनियाद पर सफल हो सकता है।······इस अपने छन्द को मैं अनेक साहित्यिक गोष्ठियों में पढ़ चुका हूं, ······इस छन्द में Art of reading का आनन्द मिलता है और इसीलिए इसकी उपयोगिता रंगमंच पर सिद्ध होती है। कहीं-कहीं मिल्टन ने और शेक्स-पियर ने सर्वत्र अपने अतुकाँत काव्य का उपयोग नाटकों में ही किया है। बंगला में माइकेल मधुसूदन-द्वारा अतुकाँत कविता की सृष्टि हो जाने पर नाट्याचार्य गिरीशचन्द ने अपने स्वच्छन्द छन्द का नाटकों में ही प्रयोग किया है। स्वच्छन्द छन्द नाटक-पात्रों की भाषा के लिए ही है, यों उसमें चाहे जो कुछ लिखा जाय।"

निराला के उपर्युक्त विचारों का विवेचन आवश्यक है :

(१) निराला ने मुक्त छन्द को कविता की (या कवि की) मुक्ति बताया जो किसी हद तक सत्य है।

(२) निराला के अनुसार उनका मुक्त छन्द बंधन-मुक्त होता हुआ भी छन्द ही है। उसका प्रवाह ही छन्द है।

(३) इस छन्द का सौन्दर्य संगीत में नहीं, पढ़ने में है।

(४) निराला ने छन्द के संगीतात्मक सौन्दर्य और आनन्द जैसी ही आनन्द-प्राप्ति अपने मुक्त-छन्द के पढ़ने में मानी है। यद्यपि निराला का ऐसा कथन उनका अतिवाद ही है, फिर भी इससे यह तो स्पष्ट है कि निराला को शास्त्रबद्ध छन्द के संगीत-सौन्दर्य का महत्त्व स्वीकार्य था।

(५) उपर्युक्त उद्धरण की अन्तिम पंक्तियों में निराला के मुँह से अनायास ही एक ऐसे सत्य का उद्‌घाटन हो गया है, जो उनके मुक्त छन्द का असली महत्त्व और स्थान स्पष्ट बता देता है। निराला ने अपने इस पाठ्य छन्द की उपयोगिता मंच पर ही स्वीकार की है। उनके अनुसार वह "नाटक-पात्रों की भाषा के लिए है, यों उसमें चाहे जो कुछ (कविता भी) लिखा जाय।" स्पष्ट है कि निराला अपने गद्यवत् स्वच्छन्द छन्द को कविता की अपेक्षा नाटक के वार्तालाप की वस्तु मानते थे। इसी दृष्टि से उन्होंने कहा कि "सौन्दर्य गायन में नहीं, वार्तालाप में है।"

अतः प्रमाणित हुआ कि (१) छन्द कविता का अनिवार्य तत्त्व है जिसके बिना उसका पूर्ण सौन्दर्य सिद्ध नहीं होता। वह बंधन अवश्य है, पर ऐसा श्रमसाध्य बांध है जो शक्ति उपजाता है।

(२) छन्दरहित पाठ्य कविता कविता नहीं, गद्य-काव्य ही हो सकती है, वह भी यदि उसमें भाव-प्रवणता हो।

(३) स्वच्छन्द छन्द भी एक तरह का अव्यवस्थित अनिश्चित छन्द हो सकता है यदि उसमें प्रवाहात्मकता के कारण पाठ्य सौन्दर्य हो। वह संगीतात्मक नहीं। उसकी उपयोगिता कविता की अपेक्षा नाटकों में पात्रों के वार्तालाप में प्रयुक्त करने में है।

(४) छन्दों से कविता में जो संगीतात्मक प्रभावशक्ति आ जाती है, वह अत्यन्त मनोहारी और अलौकिक आनन्द प्रदान करती है। संगीत अपने में एक महत्त्वपूर्ण कला है। कविता को उसकी इस सहयोगिनी कला से वंचित करना कविता का अहित करना ही है। हम रोज ही कवि-सम्मेलनों में देखते हैं कि जो कवि अपनी रचना गाकर सुनाता है, उसका प्रभाव अधिक पड़ता

है। इसके विपरीत, छन्द और गेयतारहित कविता को पढ़कर सुनाने वाला कवि मंच पर कम जम पाता है।

हिन्दी में निराला के मुक्त छन्द की देखा-देखी जो केंचुआ, रबड़, कंगारू, स्वच्छन्द पंक्तियों की कविताएं रची जाने लगीं, उनमें तो सब नियम-बंध आदि ताक पर रख दिए गए। आजकल के घर-घर बसने वाले कवि तो मनमाना पंक्ति-प्रयोग कर रहे हैं। न उन्हें संगीत से कुछ मतलब है, न लय-ताल-गति से। कविता करना कितना आसान हो गया है! मनमाने ढंग से पंक्तियों को छोटा-बड़ा रख लिया जाता है। लय की उपेक्षा भला कविता को कब तक जीवित रखेगी? आज की निःछन्द, नीरस, गद्यवत् कविता को देखकर बड़ा दुःख होता है।

मुक्त छन्द के उपर्युक्त विवेचन की पृष्ठभूमि में जब हम 'कनुप्रिया' के मुक्तछन्द-प्रयोग पर विचार करते हैं, तो ये तथ्य हमारे सामने प्रकट होते हैं: 'कनुप्रिया' की मुक्त छन्द-शैली गद्यवत् ही है। वह कविता की अपेक्षा गद्य-काव्य है। उसमें भाव-प्रवणता का गुण उसे गद्यकाव्य सिद्ध करता है। गद्य-गीति या गद्यकाव्य-रूप 'कनुप्रिया' संगीतात्मक रचना तो नहीं कही जा सकती, पर उसका अकुंचित प्रवाह उसे स्वर-लय-गति प्रदान किये हुए है। 'कनुप्रिया' की स्वच्छन्द छन्द शैली का पाठ्य-महत्त्व निर्विवाद है। वस्तुतः भारती ने इसमें सम्बोध शैली का अर्थात् एक पात्र (राधा) द्वारा अपने प्रिय कनु को सम्बोधन करने की वार्तालाप शैली का प्रयोग किया है, जो नाटकीय प्रतीत होती है और निराला के अनुसार, इस नाटकीय वार्तालाप-रूप में इस शैली की उपयोगिता असंदिग्ध है।

मुक्त छन्द शैली के प्रयोग में भारती ने अद्भुत कुशलता का परिचय दिया है। बहुत ही कम रचनाओं में ऐसी सशक्त कलात्मक मुक्त छन्द शैली दिखाई देती है। निराला की 'जुही की कली' जैसी मुक्त छन्द-रचनाओं से कम प्रवाहात्मकता 'कनुप्रिया' की गद्यगीतियों में नहीं है। हम पीछे भाषा-शैली के विवेचन में इस प्रवाहात्मकता के कारणों—सानुप्रासिकता, संयोजक 'और' आदि की आवृत्ति, कोमल-मधुर शब्दावलि का प्रयोग आदि—पर सोदाहरण प्रकाश डाल चुके हैं। भारती के मुक्त छन्द में मध्यतुक या अन्तः तुक की प्रवृत्ति भी प्रवाह और स्वर-लय-गति उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हुई है। एक उदाहरण देखिए:

यह जो अकस्मात्
आज मेरे जिस्म के सितार के
एक-एक तार में तुम झंकार उठे हो—

इन पंक्तियों में शब्द और वर्ण-मैत्री और आवृत्ति स्वतः ही प्रवाह और माधुर्य रस उत्पन्न कर रही है। 'तार' की मध्य-तुक 'झंकार' की अंतः तुक से मिलकर एक मधुर झंकार प्रकट कर रही है। कहीं-कहीं अनायास ही अन्त्यानुप्रास या तुकान्तता भी है, पर परंपरागत बंध-रूप में नहीं, स्वच्छन्द रूप में है—

जो जड़ों में रस बनकर खिंचता है
कोंपलों में फूटता है,
पत्तों में हरियाता है
फूलों में खिलता है,
फलों में गदरा आता है— (पृ० ४३)

मुक्त छन्द की नई शैली में भारती ने कोष्ठकों, विभिन्न विराम—चिह्नों, छोटी-बड़ी पंक्तियों, शब्दहीन बिन्दु-पंक्तियों आदि का जो प्रयोग है, वह भी बेमतलब बेहिसाब नहीं है। वस्तुतः ऐसे सब प्रयोग प्रवाह के आधार पर किये गए हैं जो अत्यन्त सार्थक और कलात्मक हैं। एक उदाहरण देखिए—

नया है
केवल मेरा
सूनी मांग आना
सूनी मांग, शिथिल चरण, असमर्पिता
ज्यों का त्यों लौट आना······

इस उद्धरण में प्रत्येक पंक्ति असमान है, पर यों ही नहीं, भाषा के प्रवाह और भावार्थ की दृष्टि से ही उनकी नियोजना हुई है। अंत में शब्दरहित बिन्दुओं से स्पष्ट संकेत मिलता है कि अभी कहने को यहां बहुत कुछ और है। जैसा कि कहा जा चुका है भारती की इस मुक्त छन्द शैली की सफलता का बड़ा रहस्य उसकी सम्बोध-शैली है। सम्बोधनों की उपयुक्तता तो निर्विवाद है ही, सम्बोधन और वार्तालाप के अनुसार शैली में भावानुरूपता और उतार-चढ़ाव है। इसी कारण भाषा का गद्यवत् रूप भी कविता-का-सा आनन्द प्रदान करता है।

अतः कहा जा सकता है कि भारती 'कनुप्रिया' में मुक्त छन्द शैली के सफल प्रयोक्ता हैं। उन्होंने नये शब्द-वाक्य-विधान तथा नई अनूठी कल्पनाओं और कलात्मक अभिव्यक्ति-द्वारा मुक्त छन्द शैली को उत्कर्ष पर पहुंचाया है, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

९ : 'कनुप्रिया' का काव्य-रूप

'कनुप्रिया' का काव्य-रूप क्या है ? —यह प्रश्न भी कुछ उलझन-भरा है। ८४ पृष्ठों की यह काव्य-कृति कथात्मक संदर्भ होने के कारण सर्वथा मुक्तक रचना नहीं कही जा सकती, और कथा-प्रबन्ध के अभाव से उसे सफल प्रबंध-काव्य भी नहीं कहा जा सकता। महाकाव्य तो वह है ही नहीं। प्रश्न यह रह जाता है कि क्या 'कनुप्रिया' को किसी तरह खण्डकाव्य कहा जा सकता है ?

खण्डकाव्य कथात्मक प्रबन्ध काव्य का वह रूप है जिसमें जीवन के किसी संक्षिप्त प्रसंग या घटना का क्रमबद्ध आयोजन होता है। इसमें महाकाव्य का-सा विस्तार, अनेक प्रासंगिक घटनाएँ और कथाएँ, अनेक पात्र तथा अत्यन्त विस्तृत जीवन-फलक से सम्बन्धित विपुल भाव-विस्तार नहीं होता, अपितु एक संक्षिप्त कथा, सीमित घटना या घटनाएँ, दो-चार पात्र, अपेक्षाकृत सीमित जीवन तथा सीमित भाव-रस होते हैं।

'कनुप्रिया' कथात्मक काव्य नहीं है, वह भाव-प्रधान रोमानी गद्यगीति-काव्य है। पर एक बात इसमें विशिष्ट यह है कि चाहे कथा का एक अकुंचित प्रवाह 'कनुप्रिया' में नहीं है, पर राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों की कतिपय खंड-अनुभूतियां इसमें अवश्य हैं जिनके कारण राधा-कृष्ण की प्रेमकथा की अन्त-र्धारा इसमें प्रवाहित प्रतीत होती है। 'कनुप्रिया' में प्रेमकथा के प्रसंग भी क्रम-बद्ध नहीं हैं, कथा का क्रमिक विकास होने के स्थान पर इसमें भावों (राधा की भावानु-भूतियों) का क्रमिक विकास प्रकट हुआ है। पर समग्र रचना पढ़ लेने के उपरांत कृष्ण-कथा की एक रूपरेखा ज़हन में अवश्य उतरती है।

राधा-कृष्ण-प्रणय की यह संक्षिप्त कथा 'कनुप्रिया' की भाव-प्रवणता में अनुस्यूत है : राधा नवल किशोरी और नवयौवना सुन्दरी है। उसके पदाघात से अशोक-वृक्ष खिलता है। वह अनिंद्य सुन्दरी है, प्रकृति-स्वरूपा है। कृष्ण (कनु) ब्रज का छैला और छलिया है। राधा नीर-भरन को यमुना पर जाती है तो

वह छलपूर्वक राधा के मार्ग में कदम्ब के नीचे ध्यानमग्न वनदेवता-सा बन-कर खड़ा रहता है। राधा उसे देवता समझ करबद्ध प्रणाम अर्पित करती है। पर कृष्ण अडिग, निश्चल खड़ा रहता है, राधा के प्रणाम को भी नहीं स्वीकारता। राधा उसे वीतरागी समझ बैठती है। पर वह तो छलिया निकला ! राधा के अंग-प्रत्यंग का लोभी निकला ! वह राधा को अपने प्रेम-पाश में बांध लेता है, राधा के जिस्म के सितार के तार-तार में झंकार उठता है। राधा अपने प्रिय कनु से मिलने को—उसकी चंदन-बांहों के कसाव में बेसुध होने को तड़पती रहती है। वह यमुना में घण्टों निरावृत्त खड़ी रहती है और कल्पना करती है कि यह यमुना के जल की सांवली गहराई नहीं है, यह कनु है जो सारे आवरण दूर कर उसे चारों ओर से कण-कण रोम-रोम अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिगन में पोर-पोर कसे हुए है !

राधा कनु की रास में सम्मिलित होती है। कनु उसे अंशतः ग्रहण कर सम्पूर्ण बनाकर लौटा देते हैं। राधा को पछतावा होता है कि वह उस रास की रात लौट क्यों आई ! जो चरण कनु के वेणुवादन की लय पर कनु के नील जलज-तन की परिक्रमा देकर नाचते रहे, वे फिर घर की ओर उठ कैसे पाये !! वह लौटी क्यों ? कण-कण अपने को कनु को समर्पित करके रीत क्यों नहीं गई ? कनु भी विचित्र है ! आप ही बांसुरी के गहरे आलाप से मदोन्मत्त कर राधा को खींच बुलाता है, और स्वयं वापस लौटा देता है !

कनु आम्र-वृक्ष की डाली के नीचे खड़े होकर राधा को अपनी वंशी-ध्वनि में टेरता है। राधा लाज की मारी ठीक उसी समय नहीं आ पाती। कनु प्रतीक्षा कर लौट जाता है। राधा देर से आती है, तो पछताती है। वह अपनी विवशता कैसे समझाए ! भय, संशय, गोपन, उदासी—ये सभी उसे अभिभूत कर लेती हैं ! कनु आम्र-बौर का चूर राधा की क्वांरी-उजली मांग में भरना चाहता है, पर राधा उसका ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझ पाती। कृष्ण संकेतों से प्यार की भाषा समझाता है। राधा उसके बहुत-से संकेत समझ भी लेती है : जैसे कनु जब अर्द्धोन्मीलित्त कमल के फूल भेजता है तो राधा समझ जाती है कि कनु ने उसे संझा-बिरियां बुलाया है, जब वह अगस्त्य के कटावदार फूल भेजता है तो राधा जान जाती है कि कनु टीले पर के छायादार कदंब के नीचे उसके पांवों में महावर लगाना चाहता है। कितनी बार जब कनु ने पोई

की जंगली लतरों के पके फलों को तोड़कर मसलकर उनकी लाली से राधा के पांव में महावर लगाना चाहा है, तो राधा कनु की गोद में लाज से धनुष की तरह दोहरी हो है गई और अपने पाँव खींच लेती रही है।

राधा कनु के प्रेम में इतनी तन्मय है कि जब वह हाट-बाज़ार में दधि बेचने जाती है तो 'दधि ले लो' की बजाय 'श्याम ले लो' 'श्याम ले लो' पुकारती हुई नगर-डगर में अपनी हँसी कराती फिरती है।

जब ब्रज में दावानल का प्रकोप हुआ तो कनु ने दावाग्नि में सुलगती डालियों, टूटते वृक्षों, हहराती हुई लपटों और घुटे हुए धुँए के बीच असहाय और बावली-सी भटकती हुई राधा को साहसपूर्वक अपने दोनों हाथों में फूल की थाली-सी सहेज कर उठा लिया था और लपटें चीर कर बाहर ले आए। राधा आदर, आभार और प्रगाढ़ स्नेह मे भर गई थी। कभी-कभी जब कनु राधा को सखियों के सामने बुरी तरह छेड़ता है तो राधा को बहुत बुरा लगता है, तब उसे कसमें खाकर अपना प्यार छिपाना पड़ता है। गुरुजन रोष से भरकर उससे पूछते हैं : कनु तेरा कौन है ? सखियाँ व्यंग्य से यही प्रश्न करती हैं। राधा उनको कैसे बताए कि कनू उसका प्रिय है, सखा है, बंधु है, आराध्य है, रक्षक है और सर्वस्व है !

राधा और कनु का नाता अटूट है। यह ब्रह्म और उसकी शक्ति का चिर-संबंध है। पुरुष और प्रकृति का अभिन्न संबध है। राधा और कृष्ण के प्यार पर ही इस सृष्टि का उद्भव, स्थिति और लय आधारित है। यह सृष्टिक्रम उनके ही प्रगाढ़ प्रणय की पुनरावृत्तियां हैं। राधा कनु की केलिसखी है।

प्रगाढ़ प्रणय और उद्दाम विलास-क्रीड़ा के बाद कनु राधा को छोड़कर इतिहास-निर्माण के लिए चला जाता है। वह धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय का निर्णय कर हिंसापूर्ण युद्ध का आयोजन करता है। जूए के पांसे की तरह अपना निर्णय फेंक देता है : जो मेरे पैताने है, वह स्वधर्म, जो मेरे सिरहाने है, वह अधर्म ! वह महाभारत युद्ध में अर्जुन को उपदेश देकर उसका मोह दूर करता है। पर जब युद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेनाएं नष्ट हो जाती हैं, तो कनु राधा की कल्पना में उदास, असफल और खिन्न हो उठता है।

इधर राधा कनु के वियोग में तड़पती है। वह कनु को उपालंभ देती है, व्यंग्य के स्वर में कनु के हिंसापूर्ण युद्धायोजन की निंदा करती है। वह प्रश्न

करती है कि यदि उसका प्यार, उसके तन्मयता के क्षण कोरी भावुकता थे, रंगे हुए स्वप्न थे तो क्या भीषण नर-संहार वाला कनु का यह युद्ध सार्थक है, उचित है ?

राधा को अनुभव होता है कि कनु अपने इतिहास-निर्माण और युद्धा-योजन से हताश और असफल लौट रहा है। बहुत दिनों बाद उसे राधा की याद आई है। राधा को विश्वास है कि उसके बिना कनु के इतिहास का कोई अर्थ नहीं निकल सकता था। अब राधा कृष्ण की प्रतीक्षा में पगडंडी के कठिन-तम मोड़ पर खड़ी है कि कहीं इस बार कनु अपने इतिहास-निर्माण में अकेला न पड़ जाए, वह इस बार कनु का पूरा साथ देने को प्रस्तुत है ताकि कोई यह न कहे कि राधा केवल कृष्ण की विलास-लीला की सहचरी बनकर रह गई।

'कनुप्रिया' की यह संक्षिप्त कथा-धारा है जो उसे सर्वथा मुक्तक गीति-काव्य सिद्ध होने नहीं देती। पर इस क्षीण असंबद्ध कथा-प्रवाह को प्रबंध भी नहीं कह सकते ! वस्तुतः राधा और कृष्ण के ये प्रणय-प्रसंग किसी प्रबंध-काव्य की घटनाओं के रूप में प्रकट नहीं हुए हैं, केवल मुक्तक या खण्ड भावानु-भूतियों का विषय बनाए गए हैं। घटनाओं का कोई घात-प्रतिघात या पूर्वापर प्रसंग 'कनुप्रिया' में नहीं है। अतः उसे कथात्मक खण्डकाव्य भी नहीं कहा जा सकता। 'कनुप्रिया' में केवल राधा की प्रणयानुभूति प्रकट हुई है। अतः उसमें संयोग और वियोग श्रृंगार की ही आद्यंत अवतारणा हुई है। खण्डकाव्य में जो एक अंगी रस के साथ कुछ अन्य रस-भावों की भी स्थिति होती है, वह भी 'कनुप्रिया' में नहीं है। इसमें पात्र भी केवल राधा है या परोक्ष पात्र कनु है। अतः कथा-क्रम और घटना-वैचित्र्य के अभाव तथा पात्र और रस-भाव की एकांगिता के कारण 'कनुप्रिया' को खण्डकाव्य नहीं माना जा सकता।

वस्तुतः 'कनुप्रिया' एक कथा-गर्भित रोमांटिक गद्य-गीतिकाव्य है। वह मुक्तक गीतिकाव्य (लिरिक) होते हुए भी एक संक्षिप्त कथा-संदर्भ लिए हुए है। वह वाह्यपरक कथात्मक काव्य न होकर अन्तःपरक गीतिकाव्य है। वह घटना-प्रधान न होकर भाव-प्रधान है। गीतिकाव्य के प्रायः सभी लक्षण—भाव-प्रवणता, आत्माभिव्यंजना या अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, भाव-ऐक्य, संक्षिप्ता, कोमल-कांत पदावली और स्वर-लयबद्ध संगीतात्मकता—उसमें पाये जाते हैं। उसका

प्रत्येक गद्यगीत अपने में पूर्ण और मुक्तक है। यद्यपि एक क्षीण पूर्वापर संदर्भ भी उनमें है, पर उसके बिना भी प्रत्येक गद्यगीत की भावानुभूति अपने में स्वतंत्र इकाई है। गीत संक्षिप्त हैं और भावुकता या भाव-प्रवणता से ओत-प्रोत हैं। राधा की आन्तरिक भाव-संवेदना प्रकट होने से इसमें अन्तर्मुखी प्रवृत्ति स्पष्ट है। वर्णन-शैली के स्थान पर सर्वत्र भावुकतापूर्ण भावात्मक शैली पाई जाती है। इसलिए उसे वर्णनात्मक खण्डकाव्य नहीं कहा जा सकता। कुलमिलाकर 'कनुप्रिया' कथा-प्रसंग-गर्भित भावप्रधान गद्यगीतिकाव्य है। वह सूरदास के भ्रमरगीत की भांति कथा का एक संबंध-सूत्र अवश्य लिए हुए है, पर कथा-काव्य नहीं है।

१० : 'कनुप्रिया' में परंपरा और प्रगति (नवीनता)

'कनुप्रिया' राधा-कृष्ण के परंपरागत प्रणय-प्रसंग पर आधारित रचना है। स्वभावतः उसमें कुछ पौराणिक संदर्भ, परंपरागत कथा-सूत्र और प्रतीक या संकेत पाये जाते हैं, पर भारती की लेखनी ने उसमें नव का भी सुखद संचार किया है जिसके कारण 'कनुप्रिया' में परंपरा और प्रगति या पुरातन और नवीन का सुन्दर सामंजस्य घटित हुआ है। कथा-प्रसंग, प्रतीक, बहुत-से उपमान, दार्शनिक पृष्ठभूमि, वैष्णव महाभाव आदि अनेक बातें धर्मवीर भारती ने परंपरा से ही प्राप्त की हैं। किन्तु साथ ही कुछ पौराणिक मिथकों, कवि-समयों तथा प्रतीकों को नया रूप प्रदान किया है और राधा तथा कृष्ण के चरित्रों की अंतिम परिणति में नवीन कल्पना की है। अभिव्यक्ति-शैली तो सर्वथा नवीन आधुनिक ही है। इस प्रकार नये और पुराने का मणि-काँचन-योग-सा रचना में दिखाई देता है।

राधा-कृष्ण के प्रणय-संबंधी अधिकांश संदर्भ परंपरागत ही हैं। राधा का यमुना में नीर-भरन को जाना : भोली राधा का "भरे हुए घड़े में अपनी चंचल आंखों की छाया देखकर उन्हें कुलेल करती चटुल मछलियां समझकर बार-बार सारा पानी ढलका देना (पृ० ३०-३१), परंपरागत भक्तिकालीन और रीतिकालीन संदर्भ है (नीर-भरी गगरी ढरकावै—नंददास)। राधा दधि बेचने जाती है तो 'दधि ले लो', 'दधि ले लो' के स्थान पर 'श्याम ले लो, श्याम ले लो' पुकारती हुई हाट-बाट में, नगर-डगर में अपनी हँसी कराती घूमती है!" (पृ० ३३)। सूरदास की ये पंक्तियाँ भी यही भाव प्रकट करती हैं :

> **गोरस को निज नाम भुलायो !**
> **'श्याम लेहु' 'कोउ श्याम लेहु'**
> **गलिन गलिन यह सौर मचायौ !!**

कृष्ण के वियोग में राधा उसी आम्र या कदम्ब के पेड़ तले बैठकर कंकड़, पत्ते, तिनके, टुकड़े चुनती रहती है, 'जहां कृष्ण ने उसे अमित प्यार दिया था !' (पृ० ६५) आलम की यह पंक्ति देखिए : **'जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल बैठि कांकरी चुन्यौ करै ।'**

कृष्ण राधा को अपनी बंशी-ध्वनि में टेरते हैं : 'अक्सर जब तुमने वंशी बजाकर मुझे बुलाया है ।' नंददास की यह पंक्ति देखिए :

'वे वंशी में कहत प्रिय—हे प्राणेश्वरी आव'—नाममाला ।

इसी प्रकार कृष्ण की रास-लीला का संदर्भ, दावाग्नि, कालिय नाग, इन्द्र-प्रकोप से ब्रज की रक्षा, राधा का कृष्णाभिसारिका बनना, सखियों से गोपन, कृष्ण-द्वारा राधा के पाँवों में महावर लगाना और राधा का लाज से धनुष की तरह दोहरी हो जाना, अर्द्धोन्मीलित कमल के संकेत से राधा का समझ जाना कि कृष्ण ने उसे 'संझा बिरियां' बुलाया है, अगस्त्य के कटावदार फूलों से यह संकेत पाना कि कृष्ण उसके पांव में महावर लगाना चाहता है, आदि संदर्भ परंपरागत ही हैं । निम्न पंक्तियों में ब्रज की उसी चरवाही संस्कृति की झलक दिखाई देती है, जो मध्यकालीन ब्रज भाषा कृष्णकाव्य में पाई जाती है :

गायें कुछ क्षण तुम्हें अपनी भोली आंखों से
मुंह उठाये देखती रहीं और फिर
धीरे-धीरे नंदगांव की पगडंडी पर
बिना तुम्हारे अपने आप मुड़ गयीं—(पृ० २४)

दार्शनिक आधार पर कनु को ब्रह्म का प्रतीक—शेषशायी विष्णु या नारायण का अवतार माना गया है जिसकी इच्छा से ही यह सृष्टि-उद्भव होता है, राधा को कनु ब्रह्म की शक्ति बनाया गया है—ये सब परंपरागत उद्भावनाएँ ही हैं । राधा कृष्ण की चिर-केलि-सखी है । वह विराट् प्रकृति-रूपा है । राधा और कृष्ण का प्यार पुरुष और प्रकृति या ब्रह्म और उसकी शक्ति अथवा योगमाया का शाश्वत प्रणय है । असंख्य सृष्टियों का क्रम राधा और कनु के ही प्रणय की पुनरावृत्तियां हैं । जब इच्छा की तरह कनु राधा को—अपनी शक्ति को जगाते हैं—तो सृष्टि का उद्भव होता है, दोनों का प्रणय-व्यापार सृष्टि की स्थिति का द्योतक है और जब प्रगाढ़ प्यार, उद्दाम वासना और केलि-क्रीड़ा के बाद राधा थककर सो जाती है तो यह सृष्टि लय हो जाती है ।

जीव और ब्रह्म के अंश-अंशी भाव की दार्शनिक धारणा भी वैष्णव

सम्प्रदायों से ही ग्रहण की गई है। राधा कहती है: "तुमने तो उस रास की रात जिसे अंशतः भी आत्मसात् किया उसे सम्पूर्ण बनाकर वापस अपने-अपने घर भेज दिया।" (पृ०१८)

कुछ परंपरागत प्रतीकों और कवि-समयों को भारती ने नये ढंग से अपनाया है। यह प्राचीन काव्य-रूढ़ि है कि अशोक का वृक्ष बरसों किसी नव-युवती के चरण-स्पर्श की प्रतीक्षा में पुष्पहीन खड़ा रहता है और उसके पदघात से ही खिलता है। 'पहला गीत' इसी कवि-समय पर आधारित है। पर भारती ने उसे नया यथार्थ और प्रकृत मोड़ प्रदान किया है। राधा कहती "ओ पथ के किनारे खड़े छायादार पावन अशोक वृक्ष, तुम यह क्यों कहते हो कि तुम मेरे चरणों के स्पर्श की प्रतीक्षा में जन्मों से पुष्पहीन खड़े थे! तुमको क्या मालूम कि मैं कितनी बार केवल तुम्हारे लिए—धूल में मिली हूं, धरती में गहरे उतर जड़ों के सहारे तुम्हारे कठोर तने के रेशों में कलियां बन, कोंपल बन, सौरभ बन, लाली बन—चुपके से सो गयी हूं कि कब मधुमास आये और तुम कब मेरे प्रस्फुटन से छा जाओ!"

इस नवीन योजना से कवि धर्मवीर भारती ने एक तो राधा के प्रकृति-स्वरूपा होने का परिचय दे दिया है, दूसरे इस पौराणिक काव्य-रूढ़ि को नया यथार्थ और बौद्धिक रूप प्रदान कर दिया है। साथ ही राधा के नव-यौवना और सुन्दरी होने का संकेत किया है।

इसी प्रकार 'आम्रबौर' का प्रतीक नई कल्पना से ओतप्रोत है। कनु वन-घासों में बिछी मांग-सी पगडंडी पर आम्रमंजरी का बौर चूर-चूर कर बिखेर देते हैं। यह राधा की उजली-क्वांरी पवित्र मांग को नये, ताजे आम्र-बौर से भरकर उसे चिर सुहागिन बनाना ही तो था! कनु के लिए राधा का अंग-प्रत्यंग पगडंडी-मात्र है जो उसे राधा तक पहुंचाकर रीत जाता है। राधा की क्वांरी उजली मांग भी तो पगडंडी ही थी!

इन पौराणिक दार्शनिक प्रतीकों और संदर्भोंको कवि ने आधुनिक युग की छायावादी प्रकृतिवादी नई शैली में अभिव्यक्त किया है। इस सृष्टि का हेतु है ब्रह्म की इच्छा और उसकी इच्छा का हेतु है राधा (अपनी शक्ति या योग-माया)। इसी दार्शनिक तथ्य को 'सृजन-संगिनी' शीर्षक गद्यगीत में कैसी आकर्षक काव्यमय सजीव शैली में प्रकट किया गया है!—राधा कहती है: "कौन है वह जिसकी खोज में तुमने काल की अनन्त पगडंडी पर सूरज और चांद को भेज रक्खा है।······कौन है जिसे तुमने झंझा के उद्दाम स्वरों में

पुकारा है······कौन है जिसके लिए तुमने महासागर की उत्ताल भुजाएं फैला दी हैं। कौन है जिसकी आत्मा को तुमने फूल की तरह खोल दिया है और कौन है जिसे नदियों-जैसे तरल घुमाव दे-देकर तुमने तरंग-मालाओं की तरह अपने कंठ में, वक्ष पर, कलाइयों में लपेट लिया है—वह मैं हूं मेरे प्रियतम ! वह मैं हूं, वह मैं हूं!"

शैली की दृष्टि से तो समस्त रचना आधुनिक है। आधुनिक युग के मुक्त-छन्द तथा गद्यगीत शैली को भारती ने अत्यन्त कलात्मक रूप प्रदान किया है। लाक्षणिक प्रयोगों, मूर्त्त-अमूर्त्त विधान तथा कतिपय नवीन उपमानों का आयोजन 'कनुप्रिया' को छायावादी शैली की आधुनिक रचना सिद्ध करता है। कुछ परंपरागत उपमानों का भी भारती ने प्रयोग किया है, पर अधिक प्रवृत्ति नवीनता की ही दिखाई देती है।

'कनुप्रिया' को नवीनता प्रदान करने में सर्वाधिक योग है अंतिम 'इतिहास' और 'समापन' खण्डों का। विषय-वस्तु, भाव-बोध और शैली-शिल्प सभी दृष्टि से यह अंतिम अंश कवि की मौलिक कल्पना से ओतप्रोत है। यद्यपि भारती ने परंपरा, इतिहास और संस्कृति के विपरीत यहां कृष्ण के चरित्र को कुछ दूषित दिखाया है और कनु के इतिहास-निर्माण-कार्य को केवल जन-संहारक युद्ध-रूप मान लेने की भूल की है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि परंपरा से हटकर भारती ने एक ओर तो यहां राधा के चरित्र को ऊंचा उठाया है और उसकी नारी-उपेक्षा का भाव दूर किया है, दूसरे हिंसक युद्ध के प्रति वितृष्णा उत्पन्न कर आधुनिक भाव-बोध जगाया है। राधा केवल परंपरागत कृष्ण-विलासिनी या कृष्ण-वियोगिनी ही नहीं बनी रहती, अपितु वह अब जीवन-पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर इसीलिए कनु की प्रतीक्षा में खड़ी है कि जब इतिहास-निर्माण से खिन्न और असफल कनु लौटेगा तो वह इसबार इतिहास-निर्माण में भी उसका पूरा साथ देगी, उसे सफल बनायेगी। वह नहीं चाहती कि लोग उसके बारे में यह समझते रहें कि राधा केवल कृष्ण-विलासिनी बनकर रह गई ! वह अब कनु के इतिहास में भी गुँथना चाहती है ! उस विश्वास और प्रेमपूर्ण तन्मयता और लीला-सहचरी-शक्ति के बिना भला कनु के इतिहास का कोई अर्थ कैसे निकल सकता था ? राधा कनु के युद्धायोजन तथा धर्माधर्म के निर्णय पर व्यंग्य करती हुई नर-संहारक युद्ध के प्रति घृणा उत्पन्न करती है।

इस प्रकार राधा के चरित्र में यह नया मोड़, उपेक्षिता नारी के गौरव की रक्षा का भाव, युद्ध के प्रति वितृष्णा उत्पन्न कराना, नई कलात्मक गद्यगीत शैली आदि बातें 'कनुप्रिया' को आधुनिक कृति बनाती हैं।

व्याख्या भाग

(१) पूर्वराग

पहला गीत :

'कनुप्रिया' में कवि भारती ने सर्वप्रथम 'पूर्वराग' के अन्तर्गत राधा के पूर्वराग-सम्बन्धी पाँच गीत प्रस्तुत किये हैं। पहले गीत में राधा आत्म-परिचय देती है। वह चिर सुन्दरी है। कवि-समय-प्रसिद्धि है कि अशोक का वृक्ष किसी सुन्दरी के जावक-आरक्त पदाघात से खिलता है। कवि ने इस प्राचीन मिथक या कवि-रूढ़ि को इस गीत में बौद्धिक, दार्शनिक और आधुनिक रूप प्रदान किया है। साथ ही राधा के सौन्दर्य एवं प्रकृति-रूपा विराट् दार्शनिक स्वरूप की ओर भी संकेत किया है। काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से यह पहला गीत पूर्वराग-अन्तर्गत आलम्बन (सौन्दर्य) चित्रण से सम्बन्धित है।

राधा 'पथ के किनारे खड़े छायादार पावन अशोक-वृक्ष' को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे वृन्दावन के पवित्र अशोक-वृक्ष, लो, यह मैं तुम्हारे पास आई हूं। पर तुम यह क्यों मानते हो कि तुम मुझ सुन्दरी के चरण-स्पर्श की प्रतीक्षा में युगों से बिना खिले पुष्पहीन खड़े हुए थे? तुम यह क्यों समझते हो कि तुम किसी सुन्दरी के चरण-आघात से ही खिलते हो? यह तुम्हारी भ्रांति है। यह कपोल-कल्पना है। तुम्हें ऐसा नहीं मानना चाहिये।

वास्तविकता क्या है—यह शायद तुम्हें मालूम नहीं। तुम्हें विदित होना चाहिये कि मैं स्वयं प्रकृति-रूपा हूँ। न जाने कितनी बार मैं तुम्हारे अंकुरण और पल्लवन के लिए धूल में मिली हूँ, धरती में गहरे उतर कर तुम्हारी जड़ों में रमी हूँ। तुम्हारे मोटे और कड़े तने के रेशों में समाकर कोंपलों, कोमल कलियों, उनकी भीनी-भीनी सुगन्ध और तुम्हारे पत्तों और कलियों की लाली बनकर फूटी हूँ; तुम्हारे अंग-अंग में, पोर-पोर में समा गई हूं, चुपके-से सो गई हूं। और इस

प्रतीक्षा में रही हूँ कि कब मधु ऋतु अर्थात् बहार आये और कब मेरे यौवन-प्रस्फुटन के साथ बहार में तुम भी खिल उठो।

इन पंक्तियों में राधा अपनी किशोर-अवस्था की तुलना अशोक वृक्ष की खिलने से पूर्व की अवस्था से करती है। उसके अंग-प्रत्यंग की कोमलता, सुगन्धि और लाली ही मानो अशोक वृक्ष की कोंपलों, कलियों और पत्तों में समा जाती है।

विशेष—इन पंक्तियों में एक ओर तो राधा के प्रकृति-रूप का परिचय दिया गया है, दूसरी ओर सौन्दर्य का रोमानी वर्णन हुआ है। यह जायसी के "हंसत जो देखा हंस भा, निरमल नीर शरीर" और पंत जी के—

तुम्हारी पी मुख-वास-तरंग, आज बौरे बौरे सहकार।
चुनाती लवंग लता निज अंग, तन्वी, तुमसी बनने सुकुमार।

ऐसे रोमानी सौन्दर्य-चित्रण से मिलता-जुलता है। कवि धर्मवीर भारती ने कवि-रूढ़ि को नया रोमानी रूप प्रदान कर दिया है। युवती सुन्दरी के चरण स्पर्श से ही अशोक वृक्ष नहीं खिलता, अपितु उसके अंग-अंग से, उसके अपूर्व सौन्दर्य के कण-कण से उसके सभी अंग—पत्ते, कोपलें, कलियाँ, लाली—निर्मित होते हैं। 'मधुमास' शब्द में श्लेषालंकार भी है: एक अर्थ है वसंत ऋतु और दूसरा यौवन।

फिर भी··· ··························· कलियाँ बन खिलूंगी।

'पूर्वराग' के पहले गीत के उत्तरार्द्ध की इन पंक्तियों में राधा अशोक वृक्ष को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे अशोक! यद्यपि मैं तुम्हारे रेशे-रेशे में सोयी थी, तुम्हारी कलियों, कोंपलों, सुगंधि और लाली में बिछी हुई थी, पोर-पोर में समाई हुई थी, पर तुम्हें कुछ खबर नहीं हुई, तुम्हें कुछ स्मरण नहीं आया। तब मैं यौवन-प्राप्त अपने मेंहदी-रचे चरणों से तुम्हारे पास आई और चरण-स्पर्श से तुम्हें चेत किया। अब तुम्हें याद आया कि मैं तुम्हीं में हूँ, तुम्हारे रेशे-रेशे में सोयी हुई हूँ। तुम्हें पता चला कि मेरा सौन्दर्य ही तुम्हारे अंग-प्रत्यंग में कलियों-कोंपलों के रूप में प्रकट हुआ है। अब समय आ गया है अर्थात् अब मधुमास छा गया है, बहार आ गई है, मैं पूर्ण-यौवना हो गई हूँ। अब मैं तुम्हारी रग-रग में व्याप्त हो जाऊँगी—अर्थात् मेरा यौवन तुम्हारे लिए बहार बन गया है और अब तुम्हारा भी अंग-प्रत्यंग खिल उठेगा। मैं तुम्हारी

डाल-डाल, पत्ती-पत्ती में डोलूँगी और कलियों के लाल-लाल गुच्छों को फूलों के गुच्छों में बदल दूँगी। तुम पूरी तरह खिल जाओगे।

हे पथ के किनारे खड़े वृन्दावन के पवित्र अशोक-वृक्ष, तुम यह क्यों समझते हो कि तुम मेरी प्रतीक्षा में युगों से बिना खिले खड़े थे। तथ्य यह है कि मैं तो तुम्हारे अंकुरण से लेकर पुष्पित होने तक हर समय तुम में सोयी और समायी हुई रहती हूँ। मेरा सौन्दर्य और यौवन ही तुम्हारे अंग-प्रत्यंग में फूट निकलता है।

विशेष—'पूर्वराग' के इस पहले गीत की दार्शनिक अर्थ-ध्वनि यह है कि जीव और जड़ प्रकृति में कोई अन्तर नहीं। अशोक वृक्ष और राधा दोनों एक ही सौंन्दर्य-चेतना से अनुप्राणित और प्रोद्भासित हैं। दूसरे यह कि, राधा उस विराट्-पुरुष की प्रकृति-स्वरूपा भी है, अत: वही अशोक-वृक्ष में व्याप्त है।

दूसरा गीत :

संदर्भ—राधा कृष्ण (कनु) के प्रति आसक्त हो गई है। आरंभ में वह एक तो लोक-लाज के कारण चोरी चोरी अंधेरे में कृष्ण से मिलने जाती है, दूसरे, कृष्ण से भी इस मुग्धा को लज्जा का अनुभव होता है। वह अंधेरे के परदे में भी लाज से गड़ी जाती है, दुराव-छिपाव करती है, अवगुण्ठन (परदे) से अपना मुख और अंग-प्रत्यंग छिपाती है। पर धीरे-धीरे अपनत्व बढ़ता जाता है। लाज का आवरण दूर होता है। राधा 'अपने को अपने से' कैसे छिपाये ? अब वह अपने रोम-रोम, तन-मन में कृष्ण को रमा हुआ अनुभव करती है। अब उसी का राग राधा की हृदय-तंत्री में बजता है। वह अपने इसी अनुभव को इस गीत में गाती है।

पहले गीत में कवि ने आत्म और अनात्म की अभिन्नता का बोध कराया है, इस दूसरे गीत में वह आत्म और परमात्म की अभिन्नता का संकेत देता है। आत्मबोध से पूर्व राधा अपने को 'दूसरे से' छिपाती है, लजाती है, पर आत्मबोध होने पर वह कृष्ण को अपने पोर-पोर में रमा अनुभव करती है। अब 'अपने को अपने से' कैसे छिपाये, कैसे लजाये ?

राधा अपने प्रियतम कान्ह से प्रश्न करती है : आज अचानक ही जो तुम मेरे शरीर-रूपी सितार के एक-एक तार में झंकार उठे हो, अर्थात् मेरे अंग-प्रत्यंग में रम गये हो, मेरे प्यारे, मेरे सुनहले संगीत, सच बतलाना तुम कब से

मुझ में छिपे हुए थे ? कब से मेरे अंग-अंग में सोये हुए थे ? शरीर की नस-नस से, हृदय-विपंची की तार-तार से तुम्हारा ही स्वर निकल रहा है। तुम कब से मुझ में प्रविष्ट हो ? सुनो कान्ह, मैं अपने अनुराग के प्रारंभिक दिनों में अपने सारे शरीर को—अंग-प्रत्यंग को—परदे में अच्छी तरह ढककर तुम्हारे पास आती थी ! तुम से कितनी लजाती थी मैं ! तुम्हारे सामने मेरा मुख लाज से लाल हो उठता था और मैं कैसे अपनी हथेलियों में अपना वह मुख छुपा लेती थी ! मुझे तुमसे कितनी लाज आती थी !! मेरे सांवरे, मैं अक्सर तुमसे रात के गहरे अंधेरे में मिलती थी, जबकि हाथ को हाथ नहीं सूझता था ! मुझे तुमसे कितनी लाज आती थी !! लाज की मारी मैं तुमसे कितना दुराव-छिपाव रखती थी !

पर हाय मुझे.. सो रहे थे !

गीत की अंतिम पंक्तियों में राधा कहती है कि मुझ अबोध को तब क्या पता था कि तुम एक दिन मेरे रोम-रोम से झंकार उठोगे ! मैं व्यर्थ ही तुमसे लजाती रही। तुम तो मेरे अपने थे, पोर-पोर में मुझमें समाए हुए! भला 'अपने को अपने से' कैसे छुपाया जा सकता था ! अपने से अपने को छुपाने के लिए तो कोई परदा नहीं होता। जब दुराव-छिपाव का वह लाज का परदा मैंने छोड़ दिया तो तुम मेरे शरीर-रूपी सितार के तार-तार से झंकार उठे अर्थात् द्वैत या दुई का प्रभाव मिट गया। एकमेक भाव से मैं तुम से जुड़ गई। मेरे साँवरे, मेरे सजीले संगीत, सच बताना, तुम इस दुई मिटने के क्षण की प्रतीक्षा में कबसे मुझ में सोए हुए थे ? कब से मेरे अन्दर छिपे हुए थे ? हाय, मुझे खबर भी न थी—ऐसी थी मैं अबोध !!

विशेष—(१) कवि धर्मवीर भारती ऐन्द्रिक प्रेम के गायक हैं। अतः इस गीत में भी ऐन्द्रिकता स्पष्ट है। (२) शरीर को सितार का रूपक दिया गया है और प्रियतम कान्ह को सजीले संगीत का प्रतीक बनाया गया है। (३) इस स्वच्छन्द गीत-शैली में भारती ने सानुप्रासिक शब्दों की मधुर योजना से स्वर-माधुर्य उत्पन्न किया है, जैसे—"आज मेरे जिस्म के सितार के एक-एक तार में तुम झंकार उठे हो—"। (४) 'अपने को अपने से' में यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

तीसरा गीत :

तीसरे गीत में राधा के पूर्वराग का एक भव्य चित्र प्रकट किया गया है। वृन्दावन के घाट-बाट में कान्ह तरह-तरह के छल-छन्द रचाता है। वह कदम्ब के पेड़ तले सौम्य आकृति और गम्भीर मुद्रा में ध्यान-मग्न खड़ा होता है। राधा अपना अनुभव सुनाती है। अपने प्रणय-बंधु से वह कहती है—घाट से लौटते हुए तीसरे पहर की शिथिल बेला में मैंने कई बार तुम्हें कदम्ब के पेड़ तले चुपचाप ध्यान-मग्न मुद्रा में खड़े देखा है। तुम्हारी उस देवोपम आकृति और मुद्रा से प्रभावित होकर और तुम्हें कोई वन-देवता समझकर कितनी ही बार मैंने तुम्हारे आगे सिर झुकाया और करबद्ध प्रणाम अर्पित किया।

पर हे कनु, तुम निर्विकार निश्चल खड़े रहे, जैसे मानो पूर्ण वीतरागी हो, साधु हो, अपनी साधना में लीन, अडिग ! तुमने कभी मेरी प्रणतियों पर ध्यान नहीं दिया, कभी भी प्रणामों को स्वीकार नहीं किया। दिन बीतते गये और मैंने तुम्हें प्रणाम करना छोड़ दिया। मैं भोली तुम्हें अनासक्त योगी ही समझ बैठी थी ! पर मुझे क्या मालूम था कि यह तुम्हारा छल-छन्द है। मुझे क्या पता था कि तुम्हारी वह उपेक्षा—वह अस्वीकृति ही प्रेम का अटूट बन्धन बन जायगी। तुमने मेरी प्रणाम-बद्ध अंजलियों और कलाइयों की मुद्रा को अपने अनुराग के बन्धन में ऐसा जकड़ लिया कि प्रेम की वह गाँठ कभी खुल न सके।

मुझे क्या मालूम था कि तुम्हें मेरी वह प्रणति-मुद्रा और हाथों-कलाइयों की गति इतनी भा जायगी कि तुम मेरे अंग-प्रत्यंग की एक-एक गति को मेरे प्रेम-पाश में बाँध लोगे ! मेरे सम्पूर्ण के लोभी बन जाओगे !! मुझे क्या पता था कि तुम मेरे सर्वस्व पर इतने आसक्त हो जाओगे। भला सर्वस्व के लोभी तुम केवल मेरे प्रणाम-मात्र को क्यों स्वीकार करते। और मैं भी कितनी भोली, कितनी पगली रही कि मैं तुम्हें सर्वथा अनासक्त, निर्लिप्त और वीतराग समझती थी ! तुम कितने छलिया निकले ! अब मैं समझी कि तुम केवल मेरी श्रद्धा और पूजा का पात्र नहीं बनना चाहते थे, अपितु मेरे सर्वस्व के स्वामी बनना चाहते थे। इसी से तुमने छल रचा और अपनी उपेक्षा और कृत्रिम अनासक्ति से पूर्ण आसक्ति उत्पन्न कर दी !

विशेष –(१) इस गीत में प्रणय विकास के एक मनोवैज्ञानिक तथ्य को प्रकट किया गया है। किसी प्रिय और पूज्य का उपेक्षाभाव बहुधा और भी आकर्षण का विषय बनता है।

(२) अलसाई बेला में प्रकृति का मानवीकरण और "अस्वीकृति अटूट बंधन बनकर······लिपट जायगी" में अमूर्त्त भाव का मानवीकरण सुन्दर है, जो लाक्षणिक अभिव्यंजना का द्योतक है।

चौथा गीत :

'पूर्वराग' का चौथा गीत भी ऐन्द्रियता से ओतप्रोत है। राधा अपने प्रगाढ़ प्रणय को व्यक्त करती है। उसे अपना साँवरा ही सर्वत्र दिखाई देता है। यमुना के जल में घिरी वह घण्टों ऐसा अनुभव करती है कि मानो निर्वसन श्याम-शरीर ने उसे प्रगाढ़ आलिंगन में बाँध रखा हो !

राधा अपने कनु के प्रति कहती है : यह जो मैं दोपहर के सन्नाटे में यमुना के इस सूनसान (एकांत) घाट पर अपने सब वस्त्र किनारे पर उतारकर नंगी जल में प्रविष्ट होकर घण्टों यमुना के श्यामल जल में देखती रहती हूँ, तो क्या तुम समझते हो कि मैं अपना प्रतिबिम्ब निहारती हूँ ? नहीं, मेरे श्याम, ऐसा नहीं है। मैं केवल अपने को नहीं देखती। यमुना के नीले हिलते जल में वेतसलता जैसा काँपता हुआ मेरा यह तन-बिम्ब और उसके चारों ओर यमुना के सांवरे गहरे जल का घना प्रसार मुझे ऐसा लगता है जैसे यह साँवला गहरा यमुना जल नहीं है, अपितु यह तुम हो, जो अपने निर्वसन श्याम-शरीर से मुझे चारों ओर से मेरे कण-कण को, रोम-रोम को अपने श्यामल प्रगाढ़ आलिंगन में पोर-पोर कसे हुए हो—पूरी तरह !

तुम क्या यह समझते हो कि मैं घण्टों जल में अपने को निहारती हूँ ? नहीं, मेरे साँवरे, ऐसा नहीं है। मैं तुम्हें सदा अपने से जुड़ा अनुभव करती हूँ।

विशेष—(१) नग्न प्रगाढ़ आलिंगन का यह बिम्बात्मक उल्लेख राधा के प्रणय को ऐन्द्रिक बना रहा है।

(२) इस गीत में सुन्दर बिम्ब योजना है। 'वेतसलता-सा काँपता तन-बिम्ब' उपमा अलंकार के सहारे एक सुन्दर बिम्ब है। इसी प्रकार 'मानो यह यमुना की साँवली गहराई नहीं है, यह तुम हो ·····' में सापह्नु-उत्प्रेक्षा

(अपह्नुति और उत्प्रेक्षा का संयुक्त प्रयोग) के द्वारा उत्तम बिम्ब-योजना की गई है।

(३) कवि ने कृष्ण के लिए बड़े सार्थक और साभिप्राय सम्बोधन चुने हैं। दूसरे गीत में 'स्वर्णिम संगीत' सम्बोधन अत्यन्त उपयुक्त था तो इस चौथे गीत में 'साँवरे' सम्बोधन बड़ा ही समीचीन है, क्योंकि यहाँ यमुना के नील जल से साँवरे श्याम की कल्पना की गई है।

पांचवां गीत :

इस गीत में कृष्ण की रास-लीला का संदर्भ है। शरद शर्वरी में कृष्ण अपनी बाँसुरी की मोहक तान छेड़ते थे। इस मोहक आह्वान पर गोपियाँ और राधा अपना घर-बार-काज, लोक-लाज छोड़कर कृष्ण के पास दौड़ी आती थीं। कृष्ण रास रचाते और राधा तथा गोपियों को रिझाते थे। भागवत की रासपंचाध्यायी में यह भी उल्लेख है कि कृष्ण गोपियों और राधा को समझा-बुझाकर वापस घर भेज देते थे। आध्यात्मिक दृष्टि से गोपियाँ ब्रह्म का अंश हैं और कृष्ण ब्रह्म अंशी हैं। अत. अंशी कृष्ण का अनुग्रह पाकर गोपियाँ पुष्ट और सम्पूर्ण बन जाती हैं। कृष्ण उन्हें अंशत: ग्रहण करके भी पूर्ण पुष्ट बना देते हैं।

इस पाँचवें गीत में कृष्ण की रास-लीला या रास-प्रणय की इसी महिमा का वर्णन किया गया है। राधा को इस बात का पछतावा है कि क्यों वह उस रास की रात को कृष्ण के पास से लौट आई। पश्चात्ताप करती हुई राधा अपने कनु के प्रति कहती है—यह जो मैं अनमनी-सी रहती हूँ, घर के काम-काज से ऊबकर अक्सर इधर चली आती हूँ और कदम्ब के पेड़ की छाँह में टूटी-सी, बिखरी-सी, अनमनी पड़ी रहती हूँ—यह इसलिए कि मुझे हर क्षण इस बात का पछतावा दुख देता रहता है कि उस रास की रात को मैं तुम्हारे पास से क्यों लौट आई? ओह! कितना मादक था वह रास का लास! मैं कैसे लौट आई!

जो चरण तुम्हारी बाँसुरी की तान पर, तुम्हारे नील-कमल जैसे कोमल-श्यामल तन के चारों ओर घूम-झूमकर नाचते रहे, वे चरण घर की ओर कैसे लौट आए? मैं उस दिन लौटी क्यों? सर्व-अर्पण की उस मादक-मोहक रात

में मैं अंश अर्पण कर ही क्यों लौट आई ! क्यों न मैंने कण-कण अपने को देकर तुम्हें सर्व-समर्पण नहीं किया ! मुझे इसी का पछतावा अब तक हो रहा है।

हे कान्ह, तुमने तो उस रास की रात को जिसे अंशतः भी अपना बनाया, अंशतः ग्रहण किया अर्थात् जिसे भी अनुग्रहपूर्वक केवल स्पर्श, चुम्बन, आलिंगन या केवल रास में प्रवेश दिया, वही पुष्ट एवं सम्पूर्ण हो गई और इस प्रकार अंश को अंशी बनाकर, अपना सम्पूर्ण प्रेम प्रदान कर तुमने उसे वापस अपने घर भेज दिया। मेरे साथ भी यही हुआ। मुझे भी तुमने अंशतः ग्रहण करके सम्पूण बना दिया, प्रेम-पुष्ट कर वापस घर भेज दिया।

पर हाय मेरे साँवरे ! वही प्रेम-पुष्टि ही तो मेरे शरीर के कण-कण को टीस पहुंचा रही है, वही ज्वाला तो तुम्हारे लिए कण-कण जला रही है ! मेरा अंग-अंग तुम्हें पाने को व्याकुल हो उठा है। तुमने अंशतः ग्रहण करके भी प्रेम की सम्पूर्णता से भर दिया। प्रेम की सम्पूर्णता हरदम तुम्हारे बिना तन-बदन जला रही है।

अन्तिम पंक्तियों में राधा उपालम्भ देती हुई कहती है—तुम भी कैसे विचित्र हो कान्ह ! जब मैं अपने गृह-काज में व्यस्त होती हूँ, तब तुम बाँसुरी की मादक तान छेड़कर मुझे इतना उकसा देते हो कि मैं मतवाली होकर तुम्हारे पास खिची चली आती हूँ। तुम इस तरह उत्तेजित करके स्वयं खींच बुलाते हो। और जब मैं तुम्हारे रास-लास में इतना डूब जाती हूँ, सर्व-अर्पण के लिए प्रस्तुत हो जाती हूँ, घर वापस जाना नहीं चाहती, तब तुम केवल अंशत. ग्रहण कर—केवल स्पर्श कर या केवल चुम्बन-परिरंभन से ही प्रेम-पुष्ट करके लौटा देते हो ! यह तुम्हारी क्या रीति है ? स्वयं उकसाते हो, तन-बदन में ज्वाला जगा देते हो, और जब सर्वस्व अर्पण के लिए मन मचलता है, तो रोक देते हो, केवल अंश ग्रहण कर लौटा देते हो ! यह कैसा विपरीत व्यवहार है तुम्हारा !

विशेष—(१) इस गीत में भी ऐन्द्रिकता स्पष्ट है। शारीरिक समर्पण की आकांक्षा उसके अनुराग को माँसल सिद्ध करती है।

(२) सम्पूर्ण या सम्पूर्णता से अभिप्राय है भरी-पूरी अर्थात् अछूती। दूसरे, इससे यह भी अर्थ द्योतित है कि कृष्ण अपने प्रेम से भरकर अर्थात् प्रेम-पुष्ट कर लौटा देते हैं।

३. 'नील जलज तन' में लुप्तोपमा अलंकार है।

(२) मंजरी-परिणय

आम्र-बौर का गीत :

'कनुप्रिया' में 'पूर्वराग' के पाँच गीतों के बाद कवि ने 'मंजरी-परिणय' प्रस्तुत किया है। इस द्वितीय खण्ड में तीन लम्बे गीत रखे गए हैं—(१) 'आम्र बौर का गीत', (२) 'आम्र-बौर का अर्थ', (३) 'तुम मेरे कौन हो।'

'आम्रबौर का गीत' में राधा चरम साक्षात्कार के क्षणों में अपने अज्ञात भय, संशय, उदासी, गोपन आदि मनोभावनाओं का वर्णन करती है।

यह जो मैं..................................तुम बुलाते हो।

राधा अपने कनु के प्रति कहती है—यह जो मैं कभी-कभी चरम सुख—चरम मिलन के क्षणों में बिलकुल जड़, निश्चेष्ट और उदास हो जाती हूँ, इसका रहस्य तुम क्यों नहीं समझते, मेरे साँवरे! मैं तुम्हारी जन्म-जन्मान्तर की लीला-संगिनी हूँ। तुम्हारी रहस्यमयी लीला की एकांत संगिनी हूँ। तो चरम-मिलन के इन क्षणों में अचानक ही मैं तुमसे जुदा नहीं हो जाती, मेरे प्राण! अलगाव की स्थिति नहीं, यह लाज है, मेरे मन की लाज। प्यारे, तुम यह क्यों नहीं समझते कि लाज केवल शरीर की ही नहीं होती, मन की भी होती है। शरीर-मिलन की अवस्था में भी मन की लाज उत्पन्न होती है और मन में एक मधुर भय, एक अज्ञात आशंका, एक स्पष्ट गोपन, एक ऐसी मीठी वेदना, जिसकी व्याख्या करना कठिन है, एक उदासी-सी ऐसी छा जाती है कि चरम सुख के क्षणों में भी मैं अपने मन की इन लज्जा-जनित भावनाओं से ग्रस्त हो जाती हूँ। तुम्हारे प्रति मेरी उदासी का यही कारण है। भय, संशय, दुराव-छिपाव, उदासी ये सभी मनोभावनाएँ ढीठ और चंचल सहेलियों की तरह मुझे घेर लेती हैं और मैं बहुत चाहते हुए भी तुम्हारे पास उसी समय नहीं आ पाती, जब आम के पेड़ों के नीचे अपनी बाँसुरी की धुन में तुम

मेरा नाम लेकर बुलाते हो ! मेरे इस प्रकार न आने का मनोवैज्ञानिक रहस्य तुम क्यों नहीं समझ पाते !

उस दिन तुम .... मैं नहीं आई ।

कनु, मुझे मालूम है—उस दिन तुम आम्र-बौर से लदी, झुकी उस आम की डालियों के सहारे टिके कितनी देर तक मुझे बाँसुरी की धुन में बुलाते रहे। सूरज ढले तक टेरते रहे। ढलते सूरज की फीकी और उदासी-भरी चंचल किरणें तुम्हारे माथे के मोर-पंखों पर थिरक कर, चमक कर बेबसी के साथ उदास लौट गईं, पर मैं नहीं आई ! मैं तुम्हारे आह्वान पर नहीं पहुँची ! मेरे साँवरे, इसका कारण यह नहीं है कि मैं आना नहीं चाहती थी या अनुराग की कमी थी, अपितु मैं लाज के कारण चाहते हुए भी नहीं आ सकी।

तुम मुझे बराबर बुलाते रहे। सांझ ढले तुम गायों के साथ भी वापस नहीं लौटे, मुझे टेरते रहे। गायें थोड़ी देर मुँह उठाये तुम्हारी ओर देखती रहीं, पर तुमने चलनें का नाम ही नहीं लिया तो वे बेचारी तुम्हारे बिना ही नंदगाँव की पगडण्डी पर अपने आप मुड़ चलीं, तुम मेरी प्रतीक्षा में रहे। पर मैं नहीं आई। यही नहीं, अँधेरा छाने लगा। यमुना के घाट पर मछुओं ने अपनी नावें बाँध दीं और कंधों पर अपनी नावों की पतवारें रखकर वे भी अपने-अपने घरों को चले गये, तुम मुझे टेरते रहे, पर मैं नहीं आई।

आखिर निराश और हताश हो, तुमने बंशी अपने होठों से हटा ली थी और तुम खिन्न-मौन आम्र-वृक्ष की जड़ों पर बैठ गये थे और बैठे रहे, बहुत देर तक बैठे रहे ! मेरी प्रतीक्षा में बैठे रहे, पर मैं नहीं आई, नहीं आई ! आखिर तुम वहाँ से उठे। एक झुकी हुई डाल से तुमने एक खिला बौर तोड़ा और धीरे-धीरे उदास मन से पगडंडी पर चल पड़े। तुम्हारे अनजान में ही तुम्हारी उंगलियाँ उस आम्र-मंजरी को चूर-चूर कर श्यामल-श्यामल घास में बिछी मांग-सी उजली पगडंडी पर बिखेर रही थीं।

यह तुमने .... नहीं आई !

राधा के मन में एक मनोवैज्ञानिक ग्रंथि है। वह अपने कनु के प्रति मन-प्राण से आसक्त है। पर उसका नाता एक प्रेमिका का है। वह कनु की ब्याहता नहीं है। इसी से लोक-लाज और मन की लाज से वह बुरी तरह ग्रस्त है। वह अपने चेतन-अचेतन में यही चाहती है कि उसका कनु उसकी क्वाँरी-उजली

माँग भरकर उसके प्रेम को वैध बना दे। कनु द्वारा आम्र-बौर को चूर-चूरकर पगडंडी पर डाल देने के आचरण से वह इस बात का संकेत ग्रहण करती है कि कनु ने सांकेतिक रूप से यह उसी की माँग भरी है।

राधा कहती है—कनु प्यारे, यह तुमने क्या किया, जो आम्र-मंजरी को चूर-चूर कर माँग-सी उजली पगडण्डी पर बिखेर दिया! क्या तुम अनजाने ही उस आम्रबौर से मेरी क्वाँरी, उजली और पवित्र माँग भर रहे थे? क्या सचमुच तुम इस प्रकार मुझे अपनी ब्याहता बना रहे थे? पर मुझ पगली को देखो, तुम्हारा संकेत ज़रा भी नहीं समझी! इस संकेत को पाकर भी मैं इस अद्‌भुत सुहाग से उल्लसित होकर, नववधु की तरह माथे पर पल्ला डालकर और सिर झुकाकर तुम्हारी चरण-धूलि लेने और तुम्हें प्रणाम करने नहीं आई, अपने सांवरे के पास नहीं आयी!

पर मेरे प्राण ....चूम लेती हूँ।

राधा अपनी लज्जा-विवशता को जताती हुई अपने कनु प्रिय के प्रति कहती है—मेरे प्राण, ठीक है, मैं तुम्हारा संकेत नहीं समझ पाई, तुम्हारे बुलावे पर नहीं आई। पर प्यारे, तुम भी अपनी इस बावरी की विवशता को क्यों नहीं समझते! तुम यह क्यों भूल जाते हो कि मैं वही बावली लड़की हूँ, जो कितनी ही बार लज्जा के कारण तुम्हारे पास से भाग-भाग आती हूँ। जब तुम कदम्ब के पेड़ के नीचे बैठकर पोई की जंगली लतरों के पके फलों को तोड़कर, मसल कर उनकी लाली से मेरे पाँवों को मेंहदी रचाने के लिए अपनी गोद में रखते हो, तो मैं लाज के मारे कमान की तरह दोहरी हो जाती हूँ और पूरे बल से अपने पांव खींच लेती हूँ। यही नहीं, अपनी दोनों बाहों में अपने घुटने कसकर मुँह फेरकर स्थिर बैठ जाती हूँ। लाज से भरी उस समय तुम्हें हाथ तक लगाने नहीं देती! पर शाम को जब घर जाती हूँ तो बिलकुल एकांत में दीपक के मंद प्रकाश में अपने उन्हीं चरणों को एकटक देखती हूँ, जिन्हें तुम्हारा स्पर्श-सुख मिला था। मैं बावली-सी उन्हें बार-बार सहलाती हूँ, प्यार करती हूँ। जल्दी-जल्दी में तुम्हारे हाथ से अधूरी लगी उन मेंहदी की रेखाओं को, चुपके से चारों ओर देखकर, चूम लेती हूँ! तुम कहोगे कि कैसी पगली है! एक ओर तो महावर लगाने नहीं देती, पाँव समेट लेती है, दूसरी ओर निपट एकांत में प्यार जताती है! मैं क्या करूँ, लाज से विवश हूँ।

रात गहरा आयी है·························घायल हो गए हैं।

राधा और कृष्ण का प्रेम विकास की कई मंजिलों को पार कर चुका है। कृष्ण राधा को अपनी वंशी-ध्वनि में टेरते हैं, पर राधा लाज की मारी नहीं आ पाती। कृष्ण साँझ ढले बाद तक प्रतीक्षा कर चले जाते हैं, पर राधा लाज से नहीं आती, चाहती हुई भी नहीं आ पाती। कृष्ण राधा के साथ मंजरी-परिणय का संकेत देते हैं, पर राधा नहीं समझ पाती और मन की लाज उसे वर्जित करती है। वह बाद में अपनी विवशता पर पछताती हुई अपने कनु के प्रति कहती है—रात पूरी तरह छा गई है और कनु, तुम मेरी प्रतीक्षा करने के बाद वापस चले गये हो। अब मैं आई और बहुत देर तक उसी आम्र डाली को अपनी बाहों में लपेटे चुपचाप रोती रही हूँ, जिस पर टिके तुम मेरी प्रतीक्षा करते रहे थे! तुम कहोगे, मैं कैसी पगली हूँ, समय पर आह्वान पर तो आई नहीं, अब पछता रही हूँ, रो रही हूँ! पर मैं क्या करूँ, यह मेरी विवशता है।

सुनो, मैं लौट रही हूँ, निराशा और असफलता लेकर वापस जा रही हूँ। आम के जो बौर-कण तुमने चूर-चूर कर पगडण्डी पर बिखेर दिये थे, वे मेरे पाँवों में बुरी तरह चुभ रहे हैं, बुरी तरह दुःख दे रहे हैं। पर तुम यह कैसे जानोगे मेरे साँवरे, कि चाहे देर से सही, मैं तुम्हारी पुकार पर आई तो सही! और माँग-सी सफेद पगडण्डी पर बिखरे ये आम्र-बौर-कण, मेरे पाँवों को साल रहे हैं तो इसीलिए क्योंकि मैं एक लम्बा रास्ता जल्दी-जल्दी तै करके आई हूँ—मार्ग के काँटों और कंकड़ों से मेरे पाँव बुरी तरह छलनी हो गये हैं। लाज ने विलम्ब भले ही कर दिया हो, पर मिलनाभिलाष कितना दौड़ाती हुई लाई है!

यह कैसे बताऊँ·································कर दोगे ?

हाय नाथ! तुम चले ही गये! थोड़ी देर और क्यों राह न देखी? मैं अपनी विवशता कैसे बताऊँ? कैसे बताऊँ तुम्हें कि चरम मिलन के—परम सुख के—ऐसे अनूठे क्षण भी कभी-कभी मेरे हाथ से जो छूट जाते हैं, तुम्हारी मार्मिक पुकार जो मैं कभी-कभी नहीं सुन पाती हूँ, और तुम्हारे साथ मिलन का जो अर्थ नहीं समझ पाती अर्थात् कि तुम मुझसे मंजरी-परिणय चाहते हो—यह मैं समझ नहीं पाती, तो मेरे साँवरे, इसका कारण यही है—तुम्हें मालूम होना

चाहिए कि लाज मन की भी होती है ! मेरा मन लाज से ग्रस्त हो जाता है और एक अज्ञात भय, अनजानी आशंका, दुराव-छिपाव का आग्रह और चरम सुख के क्षण में भी घेर लेने वाली अवर्णनीय उदासी मेरे मन-प्राणों को जकड़ लेती है। मैं विवश हो जाती हूँ और समय पर नहीं आ पाती। फिर भी घोर मानसिक संकल्प-विकल्प के बाद, मन की इन सभी बाधाओं को चीरकर मैं आई हूँ मेरे प्राण ! और आगे भी, चाहे देर से सही, मैं आऊँगी तो क्या तुम मेरी प्रतीक्षा में कुछ देर तक और नहीं टिके रहोगे ? क्या मुझे अपनी चन्दन-जैसी चिकनी, कोमल, सुगन्धित बाहों में भरकर बेसुध नहीं कर दोगे ? मुझे आलिंगन-पाश में नहीं बाँध लोगे ? क्या इसी तरह अभाव की टीस और पछतावे की अग्नि में जलता रहने दोगे ? क्या मेरी विवशता को समझकर मेरे बावलेपन को क्षमा नहीं करोगे ?

विशेष—(१) इस गीत में कवि ने राधा की मानसिक अवस्था का बड़ा ही सुन्दर बिम्बात्मक मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। राधा एक ओर तो महामिलन और चरम सुख के लिए भरपूर लालायित है दूसरी ओर लाज से रुकी और ठिठकी है।

(२) समस्त गीत में भावों, स्थितियों और मुद्राओं का बिम्बात्मक चित्रण हुआ है। उपमा अलंकार के रूप में भावों का मानवीकरण—"भय, संशय, गोपन, उदासी ये सभी ढीठ, चंचल, सरचढ़ी सहेलियों की तरह मुझे घेर लेते हैं"—कितना भव्य है !

(३) 'उदास काँपती किरणें····· बेबस बिदा माँगने लगीं'—में भी विशेषण-विपर्यय और मानवीकरण का सुन्दर लाक्षणिक प्रयोग है।

(४) पुनरुक्ति या वीप्सा के द्वारा भाव-गहनता उत्पन्न करने का सुन्दर शैली-प्रयोग इन पंक्तियों में दृष्टव्य है :

और बैठे रहे, बैठे रहे, बैठे रहे
मैं नहीं आयी, नहीं आयी, नहीं आयी।

(५) 'लाज से धनुष की तरह दोहरी हो जाती हूँ' तथा 'मांग-सी उजली पगडंडी' में भी उपमा के सहारे सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किये गये हैं।

(६) 'माथा नीचा कर····· माथे पर पल्ला डालकर·····'—इन पंक्तियों में भी सुन्दर रोमानी बिम्ब है। 'चन्दन-बाहों में भरकर बेसुध नहीं कर दोगे ?'—में भी लुप्तोपमा के साथ बढ़िया ऐन्द्रिक रोमानी बिम्ब है।

आम्र-बौर का अर्थ :

आम्र-वृक्ष की टहनी से टिके कृष्ण अपनी बांसुरी की ध्वनि में राधा को टेरते हैं। साँझ ढलने के बहुत बाद तक वह राधा की प्रतीक्षा करते हैं। पर लाज की मारी राधा समय पर नहीं आ पाती। हताश और निराश हो कृष्ण लौट जाते हैं। वह आम्र-मंजरी को तोड़कर अनजाने ही आम्र-बौर को चूर-चूर कर उजली माँग-सी पगडण्डी पर बिखेरते जाते हैं। कृष्ण के जाने के बाद राधा आती है—देर से आती है और अपनी लज्जा-जन्य विवशता पर पछताती है। वह आम्र-बौर का संकेत नहीं समझ पाई थी। पगडण्डी पर बिखरे आम्र-बौर को देखकर अब उसे समझ आता है कि उसका प्रिय कनु तो वनघासों में बिछी उजली पगडण्डी-जैसी उसकी मांग को आम्र-बौर से भरना चाहता था। राधा पछताती है—हाय ! वह क्यों आम्र-बौर का रहस्य-संकेत भरा अर्थ नहीं समझ पाई !

इस गीत में वह अपने कनु के प्रति कहती है–मेरे साँवरे, अगर मैं आम के बौर का तुम्हारा ठीक-ठीक संकेत नहीं समझ पाई तो इस तरह रुष्ट और दुखी मत हो ! मैं इस बार तुम्हारा संकेत समय पर नहीं समझ पाई तो क्या हुआ। मैंने कितनी बार तुम्हारे संकेतों को पकड़ा है, कितनी बार मैं उन संकेतों को समझकर तुम्हारे पास दौडी आई हूं। इस बार की नादानी क्या क्षम्य नहीं है, मेरे लीला-बंधु !

कितनी बार जब तुमने अधखिला, आधा बंद कमल पुष्प भेजा तो मैं तुरंत समझ गयी कि तुमने मुझे संझा के समय बुलाया है। कितनी बार जब तुमने अंजली भर-भरकर बेले के फूल भेजे तो मैं समझ जाती रही हूँ कि तुम्हारी अंजुरियाँ मेरा स्पर्श चाहती हैं, मुझे याद करती है ! कितनी बार जब तुमने अगस्त्य के दो उजले कटावदार फूल भेजे तो मैं समझ गई कि तुम तीसरे पहर को टीले के पास वाले आम के पेड़ की घनी छाया में बैठकर मेरे गोरे कटावदार पाँवों में मेंहदी लगाना चाहते हो ! मैं तुम्हारे हर संकेत को समझती रही हूँ। आज अगर आम के बौर का संकेत नहीं भी समझ पायी तो क्या इतना बड़ा मान ठान लोगे ? न, मेरे प्राण, मुझसे यों न रूठो ! मेरी नादानी पर यों न झुंझलाओ ! मैं तुम्हारी हूं, तुम्हारे संकेत पर आऊँगी' अवश्य आऊँगी ! यों न रूठो मेरे नाथ !

मैं मानती हूँ.........वर्णहीन, रूपहीनी.........................

राधा अपने सांवरे के लिए तड़पती हुई कहती है—मैं मानती हूँ, तुम अनेक बार कहते रहे हो कि "राधा ! तुम्हारी तीखी चंचल चूमने योग्य पलकें तो केवल पगडण्डियाँ हैं, जो मुझे तुम तक पहुँचाकर रीत जाती हैं अर्थात् निरर्थक हो जाती हैं। सार्थक रह जाती हो केवल तुम !" और तुमने कितनी बार कहा है, राधा, ये पतली कोमल मृणाल-जैसी गोरी चिकनी तुम्हारी नंगी बाहें तो पगडण्डियाँ-मात्र हैं, जो मुझे तुम तक पहुँचाकर बेमानी हो जाती हैं।' तुमने यह भी बहुधा कहा है कि "तुम्हारे होंठ, तुम्हारी पलकें, तुम्हारी बाहें, चरण, तुम्हारा अंग-प्रत्यंग, तुम्हारी समस्त चम्पक-रंगी देह केवल पगडण्डियाँ हैं जो चरम-मिलन के क्षणों में रीत-रीत जाती हैं—अपना महत्त्व नहीं रखतीं।" अर्थात् राधा का अंग-प्रत्यंग सौन्दर्य राधा को पाने का साधन-मात्र है, अपने में साध्य नहीं। राधा को पाकर कृष्ण के लिए शारीरिक आकर्षण का कोई महत्त्व नहीं रह जाता।

और राधा स्वीकार करती हुई कहती है—मेरे चंदन ! तुम ठीक कहते हो, मैंने भी कितनी ही बार अनुभव किया है कि तुम्हारे भुज-पाश में बँधकर मेरे शरीर का अंग-अंग महत्त्वहीन ही नहीं, अस्तित्वहीन हो जाता है। चरम मिलन के क्षणों में मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जैसे मैं शरीर के बंधन और बोझ से मुक्त हो गई हूँ। उस समय मैं शरीर नहीं, एक सूक्ष्म तत्त्व, एक सुगन्ध-मात्र हूँ—आधी रात के समय अपनी महक बिखेरने वाले इन रजनीगंधा फूलों की तीव्र मधु-गंध-सी सुगंध-मात्र हूँ—आकार हीन, रूप-रंग हीन ! अपने महामिलन के क्षणों में मेरी स्थूलता, शारीरिकता कुछ नहीं रहती। मैं 'पहुप-बास ते पातरे' प्रितयम में मिलकर 'पहुप-बास' रह जाती हूँ। मेरा भौतिक अस्तित्व नहीं रहता। वह महामिलन अलौकिक होता है।

मुझे नित नये शिल्प ....पानी ढलका देती है !

राधा अपने प्रियतम कनु के प्रति कहती है कि मेरा अंग-प्रत्यंग तुम्हारे लिए पगडण्डियाँ हैं तो क्या यह मेरी माँग अंतिम पगडण्डी थी ? वह अपने लीला-बंधु से पूछती है—मेरे शिल्पी, मुझे नित नये शिल्प-साँचे में ढालने वाले मेरे कनु ! तुम जो आम्रबौर को पगडण्डी पर बिखेरने के संकेत से मेरे उलझे-रूखे चंदन-चर्चित बालों में बनी पगडण्डी-सी उजली और उद्दीपनकारी क्वाँरी

माँग को आम्रबौर से भरना चाहते थे, तो क्या यह आखरी पगडण्डी थी जिसे तुम रिता देना चाहते थे—महत्त्वहीन कर देना चाहते थे ? क्या मेरी यह क्वाँरी माँग ही मेरे शरीर का वह अंतिम अंग थी, जिसे रीतना तुम्हें शेष रह गया था ?

हाय ! मैं भूल गई थी कि मेरे लीला-सखा, मेरे प्रकृत-मित्र कनु की तो रीति ही विचित्र है ! वह जिसे भी रिक्त करना चाहता है, जिसे भी भौतिक रूप में महत्त्वहीन और निरर्थक करना चाहता है, उसे सपूर्णता से भर देता है अर्थात् अपने संपूर्ण प्यार से भर देता है। राधा सोचती और प्रश्न करती है—क्या यह मेरी माँग मेरे-तुम्हारे बीच की अन्तिम खाई थी—अन्तिम पार्थक्य रेखा थी। अन्तिम भौतिक चिन्ह थी जो मुझे तुमसे पृथक् रखे हुए थी ! और क्या इसीलिए तुमने उस मेरी माँग को आम्र-बौर से भर-भर दिया कि वह भरकर भी इस ताजे बौर की तरह ताजी, अछूती, क्वाँरी और रीती रह जाय ! उसे फिर कोई भर न पाये और मेरे लिए उसका भरा जाना निरर्थक हो जाय !

हाय ! मैं कितनी बावली रही कि तुम्हारे इस अत्यन्त रहस्यमय अलौकिक संकेत को ठीक-ठीक न समझकर उसका लौकिक अर्थ ले बैठी और तुमसे लजाती रही ? शरीर और मन की लाज मेरा कितना बावलापन था ! प्यारे कनु, मैं करूँ भी तो क्या, अपने बावरेपन से मैं विवश हूँ। और तुम तोअपनी इस बावरी को जानते ही हो, जो नीर-भरन को जाती है, तो भरे हुए घड़े में अपनी चंचल आँखों की छाया देखकर उन्हें उछलती-कूदती चंचलम छलियाँ समझकर बार-बार सारा पानी गिरा देती है ! क्या तुम अपनी इस बावली को क्षमा नहीं कर दोगे ? मेरी इस नादानी पर मुझसे रूठो न मेरे साँवरे !

सुनो मेरे मित्र......... ....भी तो हूं न !

राधा की नादानी पर खिन्न और रुष्ट हो जाने वाले कनु से राधा साग्रह कहती है—मैं नादानी करती हूँ। सुनो मेरे कनु, यह जो मुझमें बावलापन है, यह जो मैं कभी-कभी इसे, उसे, तुम्हें, अपने को, तुम्हारे रहस्य-संकेत को नहीं समझ पाती और नादानी कर बैठती हूँ, इसमें भी एक विचित्र माधुर्य है। यह जो मुझसे नादानी हो जाती है, इसे भी होने दो, न रोको ! यह भी एक दिन हो-होकर रीत जायगी—ठीक वैसे ही जैसे मेरा प्रत्येक अंग, मेरी क्वाँरी अछूती माँग भर-भरकर रीत गई है। आखिर यह मेरी अज्ञानता कब तक रहेगी !

तुमसे महामिलन में वह भी समाप्त हो जायगी, विलीन हो जायगी। और मान लो, न भी रीते और मैं ऐसी ही पगली बनी रहूँ, तो भी क्या परवाह है ? मेरे इस बावलेपन में भी एक अजीब मिठास है। वह यह कि मेरे हर बावलेपन पर कभी रुष्ट और क्रुद्ध होकर, कभी थोड़ी देर के लिए मान से अनबोलापन ठानकर, फिर कभी हँसकर, तुम जो प्यार से मुझे अपनी बाहों में कसकर बाँध लेते हो और बेसुध कर देते हो उस महासुख को मैं क्यों छोड़ूं ! कितना अपार आनंद भर आता है उस क्षणिक व्यवधान के बाद के मिलन में ! इसलिए मेरे साँवरे, मैं तो करूँगी—बार-बार नादानी करूँगी ! तुम्हारी मुँहलगी, हठीली, नादान मित्र जो हूँ मैं ! मुझे कितना मजा आता है तुम्हें खिझाने, रिझाने में ! मैं इस आनन्द से क्यों वंचित रहूँ !

आज इस निभृत.................. मेरी माँग पर लिख दी थी।

आम्र-वृक्ष की टहनी से टिके कृष्ण अपनी बांसुरी की ध्वनि में राधा को टेरते रहे—उसकी प्रतीक्षा करते रहे। पर राधा नहीं आई। हताश कृष्ण लौट जाते हैं। वह आम्र-मंजरी को तोड़कर उंजली माँग-सी पगडण्डी पर बिखेर देते हैं। कृष्ण के लौट जाने के बाद राधा वहाँ आती है। वह देर से आती है और अपनी लज्जा-जन्य विवशता पर पछताती है, वह अपने प्यारे कनु का आम्र-बौर का संकेत ठीक-ठीक समझ नहीं पाती। उसे अपनी नादानी पर पछतावा होता है। वह अपने साँवरे के अभाव में आहें भरती है और विरह-वेदना से तड़प उठती है।

राधा अपने कनु के प्रति कहती है—हाय ! तुम चले गये। अब इस निर्जन एकांत में मैं तुमसे विलग दूर पड़ी हूँ और इस एकांत में गहन अंधकार से छाई इस रात्रि में तुम्हारे चंदन भुज-पाश के बिना मेरी देह रूपी लता के वक्ष-स्थल के गुलाब मीठा दर्द कर रहे हैं—टीस रहे हैं। मेरी छाती अभाव की टीस प्रकट कर रही है और उठने वाला मीठा दर्द उस भाषा के अर्थ खोल रहा है जो तुमने आम्र-मंजरियों के अक्षरों में मेरी माँग पर लिख दी थी। अर्थात् तुमने आम्र-मंजरी के चूर्ण से जो मेरी क्वाँरी माँग भर दी थी और जिसका अर्थ-संकेत मैं नहीं समझ पाई थी, अब अभाव की टीस उसका अर्थ खोल रही है कि किस प्रकार तुम मेरी उजली क्वाँरी माँग को आम्र-बौर से भरकर मेरी-तुम्हारी शेष पृथकता को भी समाप्त कर देना और मुझे अपनी चंदन-बाहों में कसकर बेसुध कर देना चाहते थे। हाय ! मैं कैसी बावली बनी रही !

आम के बौर की महक........................नववधू की भाँति।

विरह-व्याकुल राधा अपने कनु के प्रति कहती है—सब जानते हैं कि आम के बौर की महक कुछ तीखी और खट्टी-सी होती है और तुमने कई बार मुझमें डूबकर कहा है कि वह मेरी (राधा की) तुर्शी अर्थात् तीखापन हैं जिसे तुम मेरे व्यक्तित्व में विशेषरूप से प्यार करते हो, अर्थात् मेरे व्यक्तित्व में जो तीखापन है, वह तुम्हें विशेषरूप से भाता है। आम के बौर से यह मेरे व्यक्तित्व की समानता खूब है!

और आम का वह बौर बसंत ऋतु का पहला बौर था— सर्वथा ताज़ा, अछूता और एकदम पहला! मैंने भी कितनी ही बार तुम में खोकर कहा है: मेरे प्राण, मुझे इस बात का कितना गर्व है कि मैंने तुम्हें अपना जो कुछ दिया है, वह सब ताज़ा, सर्वथा अछूता और एकदम पहला यौवन-अंकुरण था। आम के बौर से मेरी यह कितनी विचित्र समानता है!

तो क्या उस आम्र-वृक्ष की डाल पर खिली और तुम्हारे कंधों पर झुकी वह आम की ताज़ी, अछूती, क्वाँरी तुर्श मंजरी मैं ही थी? क्या मैं और वह आम्र-मंजरी अभिन्न हैं? और क्या तुमने मुझ से ही मेरी माँग भरी थी?

यह मुझ से ही मेरी माँग क्यों भरी प्रिय! क्या इसका कारण यही है कि तुम अपने लिए नहीं, अपितु मेरे लिए मुझे प्यार करते हो अर्थात् मेरी ताज़गी, मेरे अछूतेपन के लिए मुझे प्यार करते हो!

और प्रिय! क्या तुम आम्र-बौर के रूप में मेरे ही अपनेपन को, मेरे ही अन्तर्गत अर्थ को अर्थात् ताज़गी, अछूतेपन और क्वाँरपन को मेरी माँग में भर-कर इसी बात का सबूत दे रहे थे कि तुम अपने लिए नहीं, मेरे लिए मुझे प्यार करते हो! मेरे क्वाँरपन की चिर-रक्षा के लिए मुझे प्यार करते हो!!

और प्यारे, जब तुमने कहा कि 'माथे पर पल्ला डाल लो!'—नववधू की लाज जताओ, तो क्या तुम यह जता रहे थे, क्या यह शिक्षा दे रहे थे कि मैं अपने इसी निजत्व को—अपने आन्तरिक अर्थ को—अर्थात् अपने अछूतेपन, क्वाँरेपन की सदा मर्यादा रखूँ, उसे सदा रसमय और पवित्र रखूँ! सदा अछूती और ताजी रहूँ, नववधू की तरह!!

हाय मैं सच कहती हूँ........................मेरे लीला-बंधु!

राधा को दुख है कि वह अपने प्यारे कनु द्वारा ताज़े, अछूते, मौसम के पहले आम्र-बौर से उसकी अछूती, क्वाँरी माँग भरने का ठीक-ठीक अर्थ नहीं

समझ पाई ! वह नहीं समझी कि कृष्ण उससे यही चाहते हैं कि राधा सदा नववधू की तरह ताजी, अछूती, पवित्र और रसमयी रहे, सदा अपने क्वाँरपन की मर्यादा रखे।

राधा अपने साँवरे के प्रति कहती है : हाय ! खेद है कि मैं आम्र-बौर का सही अर्थ नहीं समझ पाई। मैं सच कहती हूँ, प्रिय, मैं इसे समझी नहीं, बिलकुल नहीं समझी ! प्यारे कनु, यह जो सारे संसार से न्यारे ढंग का तुम्हारा प्यार है, इसे समझ पाना बहुत कठिन है। इस विचित्र, अनोखे प्यार की भाषा समझ लेना सरल नहीं है। सामान्य लौकिक प्यार में तो प्रिय अपनी प्रियतमा के अछूते यौवन को झूठा कर देता है, उसकी ताज़गी और क्वाँरपन को लूट लेता है, पर तुम्हारा प्यार कैसा है, जो अपनी प्रिया को सदा ताज़ा और अछूता रखना चाहता है ! मैं अगर इस अर्थ को नहीं समझ पाई तो इसमें मेरा क्या दोष ! अच्छे-अच्छे सयाने भी तुम्हारी इस रहस्यपूर्ण अलौकिक प्रेम-पद्धति को नहीं समझ पाते, फिर मैं तो तुम्हारी सदा की बावरी हूं, जो तुम्हारे प्यार में डूबी साधारण भाषा भी इस हद तक भूल गई हूँ कि गली-गली और डगर-डगर में दधि बेचती हुई 'दधि ले लो', 'दधि ले लो' की बजाय 'श्याम ले लो', 'श्याम ले लो' की आवाज़ लगाती घूमती हूँ और हाट-बाजार तथा नगर-डगर में अपनी हंसी कराती हूँ। ऐसी मैं बावरी, भला यदि अपनी माँग पर आम के बौर भरे जाने की भाषा, लिपि और उसका अर्थ ठीक-ठीक नहीं समझ पाई तो इसमें मेरा क्या दोष, मेरे लीला-सखे !

आज इस निभृत ························ समझने के लिए !

अपनी नादानी पर पछताती और कृष्ण-विरह में व्यथित राधा अपने कनु के प्रति कहती है : कनु, तुम चले गये। मैं इस निर्जन एकांत में तुमसे दूर पड़ी हूँ। तुम क्या जानो कि तुम्हारा अभाव मुझे कितना साल रहा है ! तुम्हें क्या मालूम कि कैसे मेरे सारे शरीर में आम के बौर टीस रहे हैं—कैसे मेरा अंग-प्रत्यंग नव-यौवन के अछूतेपन से टीस रहा है। आम्र-बौर की अनोखी-तीखी महक-जैसा तुम्हारा प्यार अंग-अंग में कुलबुला रहा है। तुम्हारा यह अनोखा प्यार जो पूर्णत: अपने आलिंगन में बाँधकर भी पूर्णतः अछूता छोड़ देता है, मेरी नस-नस में व्यथा की झंकार भर रहा है।

प्यारे कनु, इस प्रकार अछूता और मुक्त क्यों छोड़ देता है तुम्हारा अनोखा प्यार ! क्या इसलिए कि हर बार बँधकर भी मुक्त रहूं और बार-बार तुम्हारा

प्यार नई-नई टीस—नये-नये अर्थ-संकेतों वाली टीस भरता रहे। कैसा है तुम्हारा यह प्यार और उसकी यह अजीब टीस, मीठा दर्द !

विशेष—(१) आरंभ में कवि ने कृष्ण-काव्य के परंपरागत प्रतीक और उपमान अपनाकर परंपरागत संदर्भों को प्रस्तुत किया है, जैसे कृष्ण द्वारा अर्द्धोन्मीलित कमल भेजे जाने से राधा संकेत पाती है कि उसके कनु ने उसे संझा बिरियाँ बुलाया है। इसी प्रकार बेले के फूल, चंचल आँखों के लिए मछली, अगस्त्य के उजले कटावदार फूल नख-शिख वर्णन के परंपरागत उपमान हैं। आम के बौर का प्रतीक भी बड़ा भास्वर है। सौन्दर्य-वर्णन में 'मृणाल-सी गोरी अनावृत बांहें चम्पकवर्णी देह आदि उपमा-प्रयोग, परंपरागत होते हुए भी सुन्दर रोमानी हैं। इस प्रकार समस्त गीत में प्रतीकों, उपमानों, लाक्षणिक प्रयोगों से सुन्दर भाव-व्यंजना हुई है। कृष्ण के लिए कुछ सम्बोधन भी बढ़िया और ताज़े हैं, जैसे 'चन्दन', 'मुझे नित नये शिल्प में ढालने वाले !' 'मेरे लीला बंधु', 'सुनो मेरे मित्र', 'साँवरे' आदि।

(२) भव्य रूपक-कल्पना, लाक्षणिक अभिव्यंजना से मुक्त शैली-शिल्प का नया प्रयोग इन पंक्तियों में सुन्दर है—

तुम्हारे चन्दन कसाव के बिना मेरी देह लता के
बड़े-बड़े गुलाब धीरे-धीरे टीस रहे हैं
और दर्द उस लिपि के अर्थ खोल रहा है
जो तुमने आम्र-मंजरियों के अक्षरों में, मेरी माँग पर लिख दी थी।

(३) कहीं-कहीं बीच-बीच में उर्दू के शब्दों का प्रयोग बड़ा समीचीन है, जैसे 'आम के बौर की महक तुर्श होती है'—'मेरी तुर्शी है ...... जिसे तुम .... विशेषरूप से प्यार करते हो'।

'करूँगी ! बार-बार नादानी करूँगी, तुम्हारी मुँहलगी, ज़िद्दी, नादान मित्र भी तो हूं।' अज्ञेय आदि कुछ लोगों को यह उर्दू शब्द प्रयोग अखरा है, पर हम ऐसा नहीं मानते।

(४) पुनरुक्ति द्वारा वही भावना पर बल देने की प्रवृत्ति इस गीत में भी है—

हाय मैं सच कहती हूं,
मैं इसे समझी नहीं, नहीं समझी, बिलकुल नहीं समझी।

(५) कवि ने बड़े ही सांकेतिक रूप में, प्रतीकात्मक शैली में कृष्ण के अनोखे प्यार का—'सारे संसार से पृथक् पद्धति' के प्यार का सुन्दर वर्णन किया है।

तुम मेरे कौन हो :

तुम मेरे हो कौन...........................कौन हो कनु !

राधा और कृष्ण का परस्पर क्या नाता है ? राधा कौन है, कृष्ण कौन है ? कृष्ण राधा के क्या लगते हैं ? ये प्रश्न कृष्ण-काव्य के अध्येयता के सम्मुख सहज ही उपस्थित होते हैं। धार्मिकों ने भी इस सम्बंध में और राधा-कृष्ण के रूप-स्वरूप की अनेक दार्शनिक व्याख्याएँ की हैं, पर तो भी यह प्रश्न चिर-प्राचीन होते हुए भी चिर-नवीन बना हुआ है। 'कनुप्रिया' के इस गीत में कवि धर्मवीर भारती ने राधा की भावानुभूतियों के रूप में इस प्रश्न के अनेक पहलू प्रस्तुत किये हैं। राधा कृष्ण की कौन है ?—भिन्न-भिन्न लोग इस प्रश्न का भिन्न-भिन्न अर्थ और उत्तर निकालते हैं। राधा के लिए यह प्रश्न बेमानी है,. क्योंकि कृष्ण का उससे कोई सीमित नाता हो तो वह बताये भी कि कृष्ण मेरे यह लगते हैं। वस्तुतः कृष्ण तो उसके सखा, मित्र, बंधु, प्रियतम, परम-पुरुष, आराध्य, दिव्य-सहचर, भोला शिशु, पर साथ ही शक्तिशाली रक्षक—सब कुछ हैं।

'तुम मेरे हो कौन कनु ?'—लोगों के प्रश्नों से व्यथित राधा का मन भी सहज प्रश्न कर उठता है। पर वह क्या बताये, वह स्वयं ठीक-ठीक नहीं जान पाई। राधा कहती है : बार-बार मुझसे मेरे मन ने आग्रह से, आश्चर्य से और उत्सुकता से और गंभीरता से पूछा है—'यह कनु तेरा कौन है ? बता तो, समझा तो !' और बार-बार मुझसे मेरी सखियों ने व्यंग्य-वक्रता से, दुष्टता से, कुटिल संकेत से पूछा है—'कनु तेरा कौन है ! आखिर बोलती क्यों नहीं ? बताती क्यों नहीं, कौन है कनु तेरा, जिसके पीछे तू बावली बनी हुई है ? जिससे तू लुक-छिपकर मिलती है, वह तेरा है कौन ?'

राधा कहती है : मेरे कृष्ण-प्रेम से आशंकित होकर बार-बार मेरे गुरुजनों ने मुझ से कठोरतापूर्वक रोष के साथ पूछा है : 'यह कान्ह आखिर तेरा है कौन ?' राधा अपने कनु से कहती है—प्यारे कनु, मैं तो आज तक कुछ भी समझ नहीं पाई, बता नहीं पाई, कि तुम सचमुच मेरे कौन हो ! तुम्हीं बता दो न, तुम मेरे कौन हो ?

अक्सर जब तुमने ....अंतरंग सखा है !

राधा अपने कनु के प्रेम-व्यवहार और प्रेम-चर्या का स्मरण करती हुई कनु से अपने सम्बंध का परिचय देती है। वह अपने प्रिय के प्रति कहती है : बहुधा

जब तुमने माला गूँथने के लिए कटीली झाड़ियों पर चढ़-चढ़ कर, कष्ट उठाकर मेरे लिए लाल-लाल, सफेद-सफेद करौंदे तोड़कर मेरी झोली भरी है, तो मैंने अत्यन्त स्वाभाविक प्रेम जताते हुए गरदन झटका कर अपनी वेणी हिलाते हुए अपने मन में कहा है कि कनु ही मेरा एकमात्र अंतरंग सखा है ! वही मेरा रहस्य-सहचर है ! मेरा प्रिय है !

अक्सर जब तुमने..............................मेरा गन्तव्य !

राधा अपने कनु के प्रति कहती है : कई बार जब मैं दावानल में सुलगती हुई डालियों, टूटते वृक्षों, हहराती हुई लपटों और दम घोटने वाले धुएँ के बीच विवश और असहाय घिरी और बावली-सी भटकी फिरी हूं, तो तुमने साहस के साथ मुझे बचाया है और दावानल में घुसकर लपटों को चीरते हुए तुम मुझे अपने दोनों हाथों में फूलों की थाली की तरह सँजोये बाहर निकाल लाये हो। तब मैंने सादर, साभार और प्रगाढ़ प्यार से भरकर कहा है—"कान्ह मेरा रक्षक है, मेरा भाई-बंधु है।'

"और कई बार जब तुमने बाँसुरी की धुन में टेरकर मुझे बुलाया है और मैं मुग्ध हिरनी की तरह दौड़ती चली आयी हूं और तुमने मुझे प्यार से अपनी बांहों में बांध लिया है, तो मैंने तुम्हारे वक्ष में खोकर कहा है : कनु मेरा लक्ष्य है, मेरा ध्रुवतारा है, मेरा आराध्य देव और मेरी मंजिल !'

पर जब तुमने .... मेरा कोई नहीं है !

कृष्ण के प्रति अपने अनेक भाव और सम्बंध जताती हुई राधा कहती है कि जब-जब मुझे लोक-लाज का भय हुआ है, सखियों द्वारा हँसी उड़ाई जाने का डर रहा है, तब-तब मैंने तुम्हारे प्रति अपने सम्बन्ध को दुराव-छुपाव के आवरण में ढकने का प्रयत्न किया है। जब तुमने शरारत के साथ सखियों के सामने ही मुझसे छेड़छाड़ की है तो तुम्हारे इस दुष्टतापूर्ण व्यवहार पर खीझ कर और आँखों में आँसू भरकर प्रतिवाद करते हुए कहा है : यह दुष्ट कान्ह : मुझे यूँ ही छेड़ता है। सखी, मैं सच कहती हूं, मेरा इससे कोई लगाव नहीं, सौगंध खाती हूं, मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं, मेरा यह कुछ नहीं लगता।

पर दूसरे ही ··· ·························नहीं समझ पायी !

प्रस्तुत गीत में राधा अपने कनु के प्रति अनेक भाव-सम्बन्धों की व्यंजना करती है। वह कहती है कि मैं किसी को क्या बताऊँ कि कान्ह मेरा कौन है। गुरुजनों ने अक्सर मुझे कठोरता से पूछा है, सखियों ने कुटिलता से प्रश्न किया

है, मैं किसी को क्या बताऊँ कि कान्हू मेरा क्या लगता है। सच तो यह है कि कान्हू के प्रति अपना कोई एक नाता बताना मेरे लिए सम्भव नहीं है, क्योंकि कृष्ण मेरा अन्तरंग सखा है, बन्धु है, रक्षक है, आराध्य है और सर्वस्व है...क्या कुछ नहीं है ? राधा कहती है : अक्सर जब कृष्ण ने सखियों के सामने ही मुझे छेड़ना चाहा है तो उसके दुष्ट व्यवहार पर खीझकर अपने प्रेम-सम्बन्ध को छिपाते हुए मैंने शपथपूर्वक सखियों से कहा है कि कान्हू मेरा कोई नहीं, कुछ नहीं।

साथ ही राधा अपने कनु के प्रति कहती है : 'परन्तु जब-जब आसमान पर घटा घिर आई है, चारों तरफ वन-उपवन में अन्धकार छा गया है, बिजली कौंधने लगी है और वन-प्रान्त में तुम अकेले पड़ गए हो, तब ऐसे दुर्दिन के समय तुम्हें भोले शिशु की तरह मैंने अपने आँचल में छुपा लिया है और बड़ी सावधानी से वर्षा-उपल वज्र आदि से बचाती हुई तुम्हें गाँव की सीमा तक लाई हूं। सच मानना साँवरे, उस समय मैं तुम्हारी रक्षा में इतनी तन्मय रही हूं कि यह भूल ही गई कि तुम कितने महान हो और मैं कितनी लघु हूं कि तुम वही ब्रज-रक्षक गोवर्धनधारी श्याम हो और मैं ब्रजबाला राधा हूँ। मैं बिलकुल भूल गई हूँ कि तुम इन्द्र-प्रकोप से ब्रज की रक्षा करने वाले सर्व-रक्षक सर्व-समर्थ हो। उस समय मुझे यही लगा है कि तुम एक अबोध शिशु हो जो वर्षा के भय से असहाय मेरी गोद में आकर दुबक गये हो। और जब मैंने सखियों से बताया कि किस प्रकार भोला-भाला नन्द-छौना वर्षा से बचकर मेरे आँचल की छाया ढूँढने लगा और मैंने चितवन की छाया में अपनी स्निग्ध गोद में छिपाकर वर्षा से भीगे उसके काले-घुंघराले बाल और साँवरा मुखड़ा अपने आँचल से पोंछ दिया, तब सखियाँ मेरे इस सहज वात्सल्य और ममता के व्यवहार पर कुटिलता से क्यों मुसकाने लगीं ? यह मैं आज तक नहीं समझ पाई। क्यों सावरे ! वे सखियाँ भला क्यों हँसी ? क्या उनकी दृष्टि में मेरा-तुम्हारा नाता केवल प्रेमी-प्रेमिका का है ? क्या तुम एक भोले-भाले शिशु-रूप में मेरी भावना के आलम्बन नहीं हो ? क्या तुम्हारे प्रति मेरा वात्सल्य-भाव कृत्रिम है।

लेकिन जब तुम्हीं..दुर्दान्त ।

कनु के प्रति अपने भाव-सम्बन्ध जताती हुई राधा कहती है कि कभी तो कान्हू उसे भोला-भाला शिशु प्रतीत हुआ है जिसके प्रति वह वात्सल्य-भाव से विभोर हो उठी है, कभी उसे कनु साँवरा अपना अंतरंग सखा, प्रिय-बन्धु

प्रतीत हुआ है, कभी रक्षक अनुभव हुआ है। राधा कहती है : कभी जब काली घटा घिर आई, बिजली कड़कती है तो वर्षा से भीगा भोला शिशु-सा कृष्ण मेरे आँचल की छाया में छिपता रहा है और मैंने वात्सल्य-स्नेह से उसे गाँव की सीमा तक पहुँचाया है। किन्तु अक्सर जब तेजोद्दिप्त होकर कृष्ण ने प्रलयंकारी इन्द्र को चुनौती दी और प्रलय की बाढ़ से ब्रज-मण्डल को बचाया, तो राधा कहती है, प्यारे कनु, तुम्हारी वह प्रचंड शक्ति मैं ही तो रही हूं ! जब तुमने कालीदह में कूदकर कालिय दमन किया—उस कालिय नाग के फनों पर नृत्य किया, तो मेरे साँवरे, मुझे ऐसा लगा है कि शक्ति-प्रदर्शन के इन सब क्षणों में मेरे अंग-अंग से शक्ति की ज्योति निकलकर तुम्हारे इन कार्यों के रूप में प्रकट हुई है। प्यारे कनु ! तुम्हारी शक्ति, तुम्हारी योगमाया मैं ही हूं। तुम ब्रह्म हो तो मैं शक्ति हूं, तुम योगीराज हो तो मैं योगमाया हूं, तुम पुरुष हो तो मैं प्रकृति हूँ—सीमाहीन, अनन्त, विराट, सर्वव्यापी—निखिल में व्याप्त। कनु मेरा रक्षक है और कनु की मैं सहारा हूँ, सम्बल हूँ, सृजन, पालन, संहार-शक्ति हूँ।

किन्तु दूसरे ही क्षण .... चाहा तुमने कान्ह ?

कनु के प्रति अपने भाव-सम्बन्ध जताती हुई राधा कहती है कि इन्द्र-प्रकोप का प्रतिकार करते हुए या कालिय नाग का दमन करते हुए तेजोद्दिप्त कान्ह की शक्ति मैं ही हूँ। कान्ह परब्रह्म है तो राधा उसकी त्रिगुणात्मिका शक्ति है। कृष्ण यदि परम पुरुष है तो राधा विराट प्रकृति। किन्तु इस अलौकिक सम्बन्ध के साथ-साथ राधा-कृष्ण का लौकिक सम्बन्ध भी है। उसी सम्बन्ध को बताते हुए राधा कहती है—एक ओर तो कनु विराट पुरुष है और मैं उसकी विराट प्रकृति हूँ, पर दूसरी ओर इस वृन्दावन के कुंज-निकुंज में कान्ह मेरा लीला-बन्धु है, मैं उसकी चिर प्रेयसी हूँ। अपने कनु के प्रति राधा कहती है : अलौकिक अनुभूति के दूसरे ही क्षण, प्यारे कनु, जब तुम वृन्दावन के वेतसलता-कुंज में मेरे साथ मंजरी-परिणय करते हो, साँझ की बिरियाँ अपनी वंसी-ध्वनि में मेरा नाम टेरकर बुलाते हुए और ताजे आम्र-बौर को तोड़कर बौर के चूरे से मेरी क्वाँरी माँग भर देते हो तो मैं अपने उस सीमान्त-व्यापी अनन्त विराट-शक्ति और प्रकृति रूप से सिमिन कर सीमित हो जाती हूँ, तुम्हारे बाहुपाश में बँध जाती हूँ। साँवरे, तुम में खो जाती हूँ। तब मुझे ऐसा लगता है कि मैं तेजहीन, ज्योतिहीन, शक्तिहीन हो गई हूँ। तुम्हारी इच्छा पर मैं सीमा में

बन्धकर तुम्हारी लीला-सहचरी बनकर रह गई हूँ। मेरे अनन्त विराट शक्ति-रूप को तुमने क्यों लघु और सीमित रूप में बाँध दिया कान्ह !

पर जब मुझे.............................. नहीं मेरे सहयात्री !

प्रस्तुत गीत में राधा कनु के प्रति अपने अनेक भाव-सम्बन्धों को जताती हुई कहती है कि कभी तो उसको अपनी अलौकिक ब्रह्म-शक्ति अथवा विराट प्रकृति-रूप का आभास होता है, कभी वह वृन्दावन के कुंज-निकुंज में कृष्ण की केली-सखी के रूप में अपने को सीमाबद्ध अनुभव करती है। वृन्दावन की ब्रजबाला के रूप में वह अपने को सीमा में बँधी हुई जीवात्मा समझ बैठती है। किन्तु दूसरे ही क्षण राधा अपनी अज्ञान अवस्था से सचेत होती है। उसे अपना परारूप, जो लौकिक अनुभव के कारण विस्मृत-सा हो गया था, पुनः स्मरण आता है और वह कह उठती है : "ओह ! सीमा कैसी ! मैं तो असीम हूँ। मैं भ्रांति में पड़ गई थी। मैं किसी की परिणीता नहीं हूँ। मैं तो दिग्वधू हूँ, कालवधू हूँ, जिसे समय और सीमाएँ अपनी सीमा में नहीं बाँध सकते। प्यारे कनु ! मैं तो तुम्हारी चिर-लीला-सहचरी हूँ। तुम अनन्त हो तो मैं भी असीम हूँ। तुम और मैं अनन्तकाल से काल और दिशाओं की पगडण्डियों पर सह-विचरण करते आ रहे हैं और अनन्तकाल तक करते रहेंगे। शिव और शक्ति अथवा पुरुष और प्रकृति का यह अटूट सम्बन्ध है, चिर नाता है। मेरी और तुम्हारी यह सहयात्रा न तो कोई आदि जानती है, न अन्त। मेरे लीला-बन्धु, मैं तुम्हारी चिर-लीला-सहचरी हूँ, फिर यह प्रश्न कितना निरर्थक सिद्ध होता है कि तुम मेरे कौन हो।

पर तुम इतने ....तुम मेरे कौन हो ?

'तुम मेरे कौन हो' शीर्षक इस गीत में राधा अपने प्रिय कनु के प्रति अनेक भाव-सम्बन्धों को जताती हुई कहती है कि कनु के साथ उसका चिर-सम्बन्ध है। कनु परम पुरुष है तो वह विराट प्रकृति है, कनु शिव है तो वह शक्ति। अनन्तकाल से अनन्त पथ पर वे दोनों समय और सीमाओं की पग-डण्डियों पर सहविचरण करते रहे हैं और करते रहेंगे। वह अपने कान्ह को सम्बोधित करती हुई कहती है कि प्यारे कनु, मैं आदि काल से 'तुम्हारे साथ-साथ चलती चली आ रही हूं और चलती चली जाऊँगी। इस यात्रा का आदि न तो तुम्हें स्मरण है, न मुझे और अन्त तो इस यात्रा का है ही नहीं, मेरे सह-यात्री !" राधा पुनः कहती है : "पर प्यारे कनु, तुम तो इतने अधीर हो,

इतने निठुर और कठोर हो कि इसी जन्म में, इसी काल-अवधि में जन्म-जन्म की सभी सह-यात्राएँ दोहरा लेना चाहते हो, सभी लीलाओं की पूर्ति कर लेना चाहते हो, सभी सम्बन्धों और नातों को दोहरा लेना चाहते हो—कभी सहचरी के रूप में, कभी प्रेयसी बनाकर, कभी मंजरी-परिणीता के रूप में, कभी रक्षिता, कभी साधिका और कभी वात्सल्यमयी बनाकर अनेक रूपों और भावों के जाल में मुझे फँसाते हो और तुम्हारे साथ इस काल-यात्रा में मुझे स्थान-स्थान पर सम्बन्धों और भावों के इतने मोड़ लेने पड़े हैं कि मैं भूल ही गई हूं कि किस मोड़ पर हूं, किस सम्बन्ध में बँधी हूं और तुम मेरे कौन हो !

और इस निराधार..........................क्यों नहीं पाती ?

'तुम मेरे कौन हो' शीर्षक इस गीत में राधा अपने कनु के प्रति अनेक भाव-सम्बन्धों को जताती हुई कहती है कि कनु का और मेरा नाता चिर है; अनेक रूपों और अनेक भाव-सम्बन्धों में मैं कनु से अटूट जुड़ी हूँ और कनु मुझसे। अनन्तकाल से मैं कनु के साथ-साथ चली आ रही हूँ और चली जाऊँगी। इस यात्रा का न आदि है, न अन्त। राधा कनु को सम्बोधित करती हुई कहती है कि प्यारे कनु, तुम तो इतने अधीर, निष्ठुर और कठोर हो कि इसी काल में, इसी समय में मुझे जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्धों को दोहरा लेने को कहते हो। इसी कारण मुझे तुम्हारे साथ-साथ इतने मोड़ लेने पड़े हैं कि मैं अपने-आप बिलकुल भूल ही गई हूँ कि मैं कहाँ हूँ और तुम मेरे कौन हो।

प्रस्तुत गीत की अंतिम पंक्तियों में राधा अपने कनु को सम्बोधित करती हुई पुन: कहती है—"प्यारे कनु, टूटते हुए सम्बन्धों और नातों को इस नश्वर संसार के नश्वर प्राणी चारों ओर से मुझ पर प्रश्नों की बौछार करते हैं—'कनु कौन है ?' कोई व्यंग से, कोई कठोरता से, कोई कुटिलता से तो कोई परिहास के इन बाणों की बौछार करता है और मैं इन प्रश्नों से बुरी तरह घबरा जाती हूँ और अपनी इसी घबराहट में तुम्हें अनेक सम्बन्ध-सम्बोधनों के पाश में बाँधने का प्रयास करती रही हूँ —'कनु मेरा सखा है, मेरा बन्धु है, मेरा आराध्य है, शिशु, दिव्य तथा मेरा सहचर है।' और तदनुसार मुझे अपने को भी उन्हीं भाव-सम्बन्धों में बाँधना पड़ा है : 'मैं कनु की सखी हूँ, साधिका हूँ, बान्धवी हूँ, कनु की माँ हूँ, बधू हूँ तथा उसकी सहचरी हूँ।' और प्यारे साँवरे, मैं बार-बार इन रूपों, इन सम्बन्धों में उमड़-उमड़कर तुम्हारी लीला-सहचरी बनी हूँ। अनेक धाराओं में उमड़-उमड़कर बही हूँ और मेरे साँवरे

समुद्र, अनन्त बाहें फैलाकर तुम्हारे तट पर तुमसे मिलना चाहा है, और तुमने भी अनन्त पारावार की तरह मुझे अपनी अथाह गहराइयों में विलीन कर लिया है, अंगीकार कर लिया। मेरे साँवरे सागर, तुममें लीन होकर भी मैं तुम्हारी गहराइयों को नहीं नाप सकी। तुम्हारा पार नहीं पा सकी! और यह अब तक एक प्रश्न-चिन्ह ही बना हुआ है कि तुम मेरे कौन हो?

विशेष—(१) 'तुम मेरे कौन हो' शीर्षक गीत कनुप्रिया का सर्वश्रेष्ठ गद्य-गीत है। इसमें कवि भारती ने राधा की अन्तर-व्यथा तथा आत्मानुभूति को बड़े ही सुन्दर मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक एवं लौकिक और अलौकिक अनुभूतियों के रूप में प्रस्तुत किया है। राधा कृष्ण की क्या थी और कृष्ण राधा के कौन थे? ऐसे प्रश्नों की तीखी बौछारें न केवल राधा को सहनी पड़ी होंगी अपितु यह प्रश्न आज तक दार्शनिकों, आध्यात्मिकों, भक्तों एवं काव्य-रसिकों के लिए चुनौती बने हुए हैं। राधा के द्वारा कवि ने इनका बड़ा ही सुन्दर दार्शनिक आध्यात्मिक, भक्तिपरक एवं लौकिक प्रेमपरक सर्वांगीण समीचीन उत्तर दिया है।

(२) प्रस्तुत गीत में राधा की आत्मानुभूति की व्यंजना के अन्तर्गत कवि ने कृष्ण-लीला-सम्बन्धी दो-तीन संदर्भ प्रस्तुत करने का अवसर भी पा लिया है। यही कारण है कि 'कनुप्रिया' के ये गद्य-गीत आत्माभिव्यक्ति परक गद्य-गीति काव्य होने के साथ-साथ अपने में राधा-कृष्ण के प्रणय-प्रसंगों की एक कथा भी अनुस्यूत किए हुए हैं।

(३) समस्त गीत की भाषा अत्यन्त सरल एवं प्रवाहात्मक है। संवादात्मक शैली समस्त गीत को नाटकीय बनाए हुए है।

(४) कहीं-कहीं भारती जी ने बहुत सुन्दर बिम्बात्मक चित्र प्रस्तुत किए हैं, जैसे—"मैंने सहज प्रीति से गरदन झटकाकर वेणी झुलाते हुए कहा है।"

(५) गीत की इन पंक्तियों में अत्यन्त सुन्दर उपमा-अलंकार के सहारे सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किया है : "मुझे साहसपूर्वक अपने दोनों हाथों में फूल की थाली-सी सहेज कर उठा लिया और लपटें चीरकर बाहर ले आये।"

(६) उपर्युक्त नवीन उपमान-विधान के साथ-साथ यह परम्परागत उपमा भी पाई जाती है—

"और मैं मोहित मृगी-सी भागती चली आयी हूं।"

(७) सरिता की धाराओं और गहरे समुद्र की उपमान योजना एवं 'सांवरे समुद्र' सम्बोधन बड़ा ही सार्थक और बिम्बात्मक हैं!

(३) सृष्टि-संकल्प

सृजन-संगिनी

'कनुप्रिया' के इस तीसरे खण्ड में कवि धर्मवीर भारती ने पुरुष और प्रकृति के 'सृष्टि-संकल्प' का सुन्दर वर्णन राधा की भावानुभूतियों के रूप में किया है। राधा और कृष्ण का चिर संबन्ध अटूट है। कृष्ण परब्रह्म हैं तो राधा त्रिगुणात्मिका माया या शक्ति, कृष्ण शिव हैं, तो राधा शक्ति, कृष्ण परम-पुरुष हैं तो राधा विराट् प्रकृति है। राधा कृष्ण की लीला-सहचरी भी है और सृजन, पालन और संहार—सभी रूपों और अवस्थाओं में उसकी संगिनी हैं। त्रिगुणात्मिका शक्ति या माया का पहला रूप सृजन होता है। इसी से 'सृष्टि-संकल्प' के इस खण्ड में पहला गद्य-गीत राधा के 'सृजन-संगिनी' रूप से सम्बन्धित है।

सुनो मेरे प्यार ....अर्थ कौन है ?

सृष्टि की उत्पत्ति या सृजन के संबन्ध में ब्रह्मनाद आदि दार्शनिक मतों में कहा गया है कि यह समस्त चराचर सृष्टि ब्रह्म या परम पुरुष परमात्मा की इच्छा का परिणाम है।'एकोऽहम् बहुस्याम्' के अनुसार जब उस लीलामय में एक से अनेक होने की इच्छा जागी तो उसने अपनी शक्ति के द्वारा इस सृष्टि का प्रसार किया। प्रश्न है कि यदि सृष्टि उस परम पुरुष की इच्छा का परिणाम है तो इच्छा का हेतु क्या है ? किस इच्छा से ब्रह्म ने सृष्टि-प्रसार किया ? उत्तर स्पष्ट है – उसकी प्रकृति में रमणेच्छा। प्रकृति-स्वरूपा राधा इसी दार्शनिक तथ्य को अभिव्यक्त करती हुई कहती है कि कृष्ण (ब्रह्म या परम पुरुष) की सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ वह है, केवल वह (राधा)।

प्रस्तुत पंक्तियों में राधा अपने प्यारे कनु से कहती है—'सुनो मेरे प्यार, (My Love) तुमने जो यह सृष्टि-सृजन किया है—ये चाँद, सूरज, सागर, सरिताएँ, अंधड़-तूफान, फूल-पत्तिया बनाई हैं, आखिर इनका अन्तिम अर्थ

क्या है, प्रयोजन क्या है ? सृजन का हेतु क्या है ? यह काल के अनन्त पथ पर अपनी अनथक यात्रा करते हुए सूरज, चाँद, सितारे, तेज़ी से बहता हुआ अंधड़, गरजते हुए सागर-महासागर, हवा के झोंकों में झूलती हुई पत्तियाँ, धूप में खिले फूल और चाँदनी में लहराती-थिरकती सरिताएँ—इनका अन्तिम अर्थ क्या है ? आखिर क्या हेतु है इस समस्त सृजन का ? क्या केवल तुम्हारी निर्हेतुक इच्छा ? क्या केवल तुम इस संसार की रचना करना चाहते थे, इसीलिए तुमने यह सृजन कर डाला !

प्यारे कनु ! क्या केवल यह तुम्हारा संकल्प, तुम्हारा निश्चय मात्र है, जो सृजन के रूप में धरती की मिट्टी में सोंधापन बनकर व्याप्त हो गया है ? जो पेड़-पौधों की जड़ों में रस बनकर पेड़ के अंग-अंग में संचरित हो जाता है, कोंपलों में फूट निकलता है ? पत्तों में हरियाली बनकर छा जाता है ? फूलों में खिल उठता है और फलों में फैल जाता है ? क्या वह तुम्हारा संकल्प मात्र है ?

प्यारे लीलामय, यदि तुम्हारे समस्त सृजन, पालन, जीवन-प्रवाह और संहार—सतत् जीवन-प्रक्रिया का अर्थ केवल तुम्हारी इच्छा, तुम्हारा निश्चय या संकल्प मात्र है, तो जरा यह तो बताओ कि तुम्हारी इस इच्छा का—इस संकल्प का अर्थ कौन है ? आखिर कौन-सा आनन्द पाने के लिए, किस हेतु से तुम इस इच्छा या संकल्प की पूर्ति करते हो ? क्या मज़ा आता है तुम्हें इसमें, साँवरे ? किस आनन्द के प्रसार-हेतु तुम यह सब करते हो, मेरे आनन्दी ! ज़रा बताओ तो वह कौन है, क्या वस्तु है, जिसे पाने के लिए तुम सृजन का बखेड़ा खड़ा करते हो ?

कौन है वह..वह मैं हूँ ।

राधा अपने प्यारे कनु से प्रश्न करती है कि यदि यह समस्त सृष्टि-प्रसार तुम्हारी इच्छा का खेल है, परब्रह्म या परम पुरुष का सृजन-संकल्प-मात्र है, तो उस इच्छा के मूल में क्या है ? क्या केवल निर्हेतुक इच्छा का ही परिणाम यह सृष्टि है ? भला वह आनन्दी शुष्क आनन्दहीन इच्छा से सृजन क्यों करता ? राधा उत्तर देती है कि वस्तुतः उस इच्छा का अर्थ मैं हूँ, केवल मैं ! मुझे ही पाने के लिए, मेरे साथ आनन्द-क्रीड़ा के लिए ही वह सृष्टि-प्रसार करता है ।

प्रस्तुत पंक्तियों में राधा अपने कनु के प्रति कहती है—"प्यारे कनु, वह कौन है जिसे सृष्टि में पाने के लिए तुम यह समस्त सृजन करते हो ? किसको

खोजने के लिए तुमने समय की अंतहीन असीम पगडण्डी पर सूरज और चाँद को भेज रखा है ? कौन है जिसे तुम चाँद और सूरज का दीपक लेकर ढूंढते हो ? किसे पाने के लिए चाँद-सूरज का निर्माण किया है ?

झंझा के प्रचण्ड रव में तुम किसे पुकारा करते हो ? वह कौन है, जिसे अपने आलिंगन में बाँधने के लिए तुमने महासागर की ऊँची-ऊँची लहरों के रूप में अपनी भुजाएँ फैला दी हैं ? यह महासागर का सृजन किसे पाने के लिए हुआ है ? इन फूलों को किस लिए खिला दिया है, किसके आत्मरूप का फूल की तरह विकास किया है ? वह कौन है, मेरे साँवरे समुद्र, जिसे घूम-घूमकर बहती हुई सरिताओं की तरल तरंग-मालाओं की तरह अपने कंठ, अपनी छाती, अपनी भुजाओं में लपेट लिया है ?

सुनो प्यारे, वह मैं हूँ, मैं हूं, केवल मैं ! वह मैं हूं, जो चक्कर काटकर आती हुई सरिताओं की तरह—जन्म-जन्म में भिन्न-भिन्न मोड़ों पर मुड़ती-घूमती तुम्हारा कंठहार बनती हूं, तुममें लीन हो जाती हूं। वह मैं हूं, जिसे पाने के लिए तुम यह सब-प्रपंच रचते हो !

और यह समस्त सृष्टि........................लय हो जाती है।

राधा कहती है कि अनन्तकाल से प्रवाहित असंख्य सृष्टियों का क्रम—सृजन, पालन, संहार—केवल राधा और कृष्ण (प्रकृति और पुरुष अथवा माया और ब्रह्म) के गहरे प्यार, प्रगाढ़ वासना-विलास और अतृप्त क्रीड़ा की ही अनन्त पुनरावृत्तियाँ हैं। पुरुष की प्रकृति में रमणेच्छा से सृष्टि का सूत्रपात होता है, दोनों का क्रीड़ामय विलास ही सृष्टि का अस्तित्व है और प्रगाढ़ वासना-विलास के बाद माया या प्रकृति (राधा) का थककर सो जाना ही सृष्टि का लय है।

राधा अपने कनु के प्रति कहती है—'तुम मुझे पाने के लिए ही—मेरे साथ लीला-विलास के लिए ही यह सृष्टि-प्रपंच रचते हो और यह समस्त सृष्टि तब लीन हो जाती है—नहीं रहती—जब मैं गहन वासना और प्रचण्ड विलास-क्रीड़ा और गहरे प्यार के बाद थककर तुम्हारी चन्दन-सी शीतल, स्निग्ध, सुगन्धित एवं कोमल बांहों में आलिंगन-बद्ध हो, अचेत-बेसुधसो जाती हूँ। तब यह समस्त सृष्टि, मैं, सब तुममें ही लीन हो जाते हैं। जीवन-प्रवाह रुक जाता है। चाँद, तारे, सूरज, सब मिट जाते हैं। प्रलय छा जाती है और महाशून्य और अन्धकार व्याप्त हो जाता है। इस प्रकार इस सृष्टि की उत्पत्ति

तुम्हारी इच्छा का परिणाम है, इच्छा के हेतु है, मेरे साथ लीला-विलास और जब तक हमारा प्यार क्रीड़ारत रहता है, यह सृष्टि प्रवाहमान् रहती है। जब हमारा प्यार, हमारी विलास-क्रीड़ा थक जाती है, तब सृष्टि का प्रवाह भी रुक जाता है, सृष्टि महाशून्य में लीन हो जाती है।

और मैं प्रसुप्त..................................इच्छा की तरह।

राधा स्पष्ट करती है कि पुरुष और प्रकृति का उद्दाम प्यार ही सृजन का हेतु है और इस प्यार या क्रीड़ा-विलास का रुक जाना ही सृष्टि का लय है। जब माया या प्रकृति क्रीड़ा-विलास से थककर सो जाती है तो सृष्टि नहीं रहती, महाशून्य व्याप्त हो जाता है।

राधा अपने कनु के प्रति कहती है—प्यारे कनु, जब मैं क्रीड़ा से थककर तुम्हारी चंदन-बांहों में बेसुध सो जाती हूं तो यह समस्त सृष्टि लीन हो जाती है। तब चारों ओर गहरा अँधेरा और सूनापन छा जाता है। तदनन्तर इस सूनेपन से ऊब कर, मजबूर होकर तुम फिर सृजन-इच्छा से मचल उठते हो! तुम फिर उसी गहरे प्यार को दोहराने के लिए मुझ प्रसुप्त— बेसुध सोती हुई को आधी रात जगाते हो आहिस्ता से, ममता से, चुपचाप जगाते हो! और तब मैं जागती हूं, संकल्प की तरह, इरादे की तरह, इच्छा की भाँति! और तब पुनः हमारा क्रीड़ा-विलास आरम्भ होता है और साथ ही यह सृष्टि अस्तित्व पाती है। क्रीड़ा के बाद फिर थकान और सुसुप्ति तदनन्तर पुनः जागृति—यह सृष्टि-सृजन और लय का क्रम चलता रहता है।

महादेवी वर्मा की ये पंक्तियाँ भी सृष्टि के मूल में उस ब्रह्म की इच्छा को व्यक्त करती हैं—

> **हुआ यों सूनेपन का भान**
> **प्रथम किसके उर में अम्लान।**
> **प्रकट सुनहले रंगों के तार**
> **रच लिया आप अपना संसार।**

और लो...................................फिर मुझे जगाते हो!

प्रकृति या माया-रूपा राधा कहती है कि यह सृष्टि-संकल्प पुरुष और प्रकृति (कृष्ण और राधा) के प्रगाढ़ प्रणय और विलास-क्रीड़ा के सिवा और कुछ नहीं। राधा अपने प्रिय कनु के प्रति कहती है: "जब प्रगाढ़ प्यार और उद्दाम क्रीड़ा से थककर मैं तुम्हारी चंदन-बाहों में बेसुध सो जाती हूं तो सृष्टि

लय हो जाती है, महाशून्य और घन-अंधकार छा जाता है। तब अपने ही सूने-पन से मजबूर होकर तुम मुझे आहिस्ता से आधी रात जगाते हो। प्रलय या सृजन की हलचल से शून्य आधी रात का सन्नाटा और तुम मुझे जगाते हो! फिर क्रीड़ारत होते हो! फिर कांपते हुए गुलाबी शरीरों का मिलन होता है। कोमल, मधुर, गुनगुने स्पर्शों की क्रीड़ा चलती है। तुम मुझे अपनी बाहों में कस लेते हो। कसाव बढ़ता जाता है। सुरत की अस्पष्ट सीत्कारें सुन पड़ती हैं, गहरी सुगंध भरी साँसें फूलती हैं, और अंत में एक शिथिलता-भरा सार्थक मौन व्याप्त हो जाता है। रात्रि का सन्नाटा इस रति-क्रीड़ा से चहल-पहल में बदल जाता है। लय हुई सृष्टि पुनः झंकृत हो जाती है। हमारा गहरा प्यार और प्रगाढ़ क्रीड़ा-विलास सृजन का द्योतक होता है!

"पर इस क्रीड़ा के बाद मैं पुनः थककर सो जाती हूँ—बेसुध, चेतनाहीन! और पुनः वही गहरा अंधेरा और अनन्त सूनापन चारों ओर व्याप्त हो जाता है। सृष्टि लय हो जाती है और तुम फिर सूनेपन से ऊबकर और ताजी इच्छा लेकर मुझे फिर मुझे जगाते हो! इस प्रकार सृष्टि के उद्भव और लय का क्रम तुम्हारी इच्छा, हमारे प्रगाढ़ प्यार या क्रीड़ा-विलास और थकान तथा सुसुप्ति के अनुसार चलता रहता है—अनन्त काल तक!

और वह प्रवाह में .... केवल मैं!!!

'सृष्टि-संकल्प' खण्ड के 'सृजन-संगिनी' शीर्षक इस गीत की इन अंतिम पंक्तियों में राधा अंतिम रूप से घोषणा करती है कि वह कनु की सृजन-संगिनी है, कनु ब्रह्म की सृष्टि का कारण उसकी इच्छा है और उसकी सम्पूर्ण इच्छा का हेतु माया या प्रकृति-रूप राधा ही है - केवल राधा!

राधा अपने कनु के प्रति कहती है : सृष्टि का उद्भव, विकास और लय, उद्भव विकास और लय, पुनः उद्भव, विकास और लय—यह अनन्त क्रम तुम्हारे द्वारा मेरी जागृति, क्रीड़ा-विलास और थककर सुसुप्ति के क्रम से बंधा है। प्यारे कनु, यह काल-प्रवाह में बहती हुई तुम्हारी असंख्य सृष्टियों का क्रम केवल हमारे गहरे प्यार, प्रगाढ़ वासना-विलास और अतृप्त क्रीड़ा की सतत् और अनन्त पुनरावृत्तियाँ हैं। बार-बार हम प्रणय-बद्ध क्रीड़ा-रत होते हैं, बार-बार तुम मुझे क्रीड़ा के लिए जगाते हो, तो बार-बार सृष्टि उत्पन्न होती है—सृष्टि का उद्भव होता है। हमारा क्रीड़ा-विलास ही सृष्टि का विकास है। और बार-बार मैं क्रीड़ा से थककर तुम्हारी गोद में बेसुध सो जाती हूँ, तो

बार-बार सृष्टिलय होता है। बार-बार तुम्हारी क्रीडा अधूरी रह जाती है, हमारा प्यार अतृप्त रहता है, इसीसे बार-बार तुममें इच्छा जागृत होती है, बार-बार तुम मुझे जगाते हो! यह क्रम अनन्त है!

ओ मेरे सर्जक! तुम्हारे सम्पूर्ण अस्तित्व—तुम्हारी विद्यमानता का अर्थ है केवल तुम्हारी सृष्टि। अर्थात् तुम हो—सत्य हो—इस बात का प्रमाण देती है यह तुम्हारी समस्त सृष्टि और तुम्हारी समस्त सृष्टि का कारण है केवल तुम्हारी इच्छा। एक से अनेक होकर तुम अपना सृष्टि-प्रसार चाहते हो, तभी सृष्टि का उद्भव होता है और तुम्हारी यह सृष्टि-इच्छा भी कोई अर्थ रखती है। तुम्हारी समस्त इच्छा का अर्थ मैं हूँ, केवल मैं! केवल मैं!! तुम मेरे साथ क्रीड़ारत होने के लिए ही सृष्टि का प्रसार करते हो, तुम्हारी इच्छा का केन्द्र बिन्दु मैं ही हूँ, तुम्हारा सृष्टि संकल्प मैं ही हूँ, केवल मैं!"

विशेष : (१) प्रस्तुत गीत में कवि भारती ने आनन्दवादी दार्शनिक मतों को सुन्दर भावमयता प्रदान की है। शैव, शाक्त, वैष्णव आदि अनेक मतों में सृष्टि के उद्भव, विकास और विनाश या सृजन, पालन और संहार को परब्रह्म की इच्छा का ही खेल माना गया है। अपने सूनेपन को मिटाने के लिए जब उस परब्रह्म में रमणेच्छा जागृत होती है, तब वह अपने में से ही अपनी आनन्द-प्रसारिणी शक्ति का आविर्भाव कर उसके साथ क्रीड़ारत होता है। सृष्टि की उत्पत्ति के इसी हेतु को कवि भारती ने राधा की सुन्दर भावानुभूतियों के रूप में चित्रित किया है।

(२) यद्यपि समस्त गद्यगीत में अलौकिक आध्यात्मिक भावानुभूति पाई जाती है, पर 'जिस्म' के आग्रह को कवि यहां भी नहीं छोड़ पाया है। इन पंक्तियों में ऐन्द्रिक उत्तेजना स्पष्ट है :

> **कांपते हुए गुलाबी जिस्मों**
> **गुनगुने स्पर्शों**
> **कसती हुई बाहों**
> **अस्फुट सीत्कारों**
> **गहरी सौरभ-भरी उसासों**
> **और अंत में एक सार्थक शिथिल मौन......**

सुरत के ऐसे खुले चित्रण हमारे धार्मिक साहित्य का चिर अंग बने हुए हैं। शैवों के आनन्दवाद, सिद्धों के महासुख और वैष्णवी माधुर्य भावना में

सर्वत्र इनकी स्थिति है। पर ऐसा खुला चित्रण अलौकिकता के स्थान पर लौकिक ऐन्द्रिक उत्तेजना ही उत्पन्न करता है।

(३) कान्ह के लिए राधा इस गीत में भी कई सुन्दर सम्बोधनों का प्रयोग करती है, जैसे, 'मेरे प्यार' अंग्रेजी के 'My Love' का अनुवाद है, 'मेरे इच्छामय' भी सार्थक सम्बोधन है।

(४) 'चंदन-बाहों' में सुन्दर लुप्तोपमा का प्रयोग हुआ है। नदियों जैसे तरल घुमाव दे देकर, तुमने तरंग-मालाओं की तरह अपने कण्ठ में, वक्ष पर, कलाइयों में लपेट लिया है"—में भी सुन्दर उपमा है।

(५) समस्त गद्यगीत सरल, प्रवाहयुक्त प्रभावी भाषा-शैली में रचा गया है। भाव-तीव्रता के लिए शब्दों की पुनरावृत्ति का सुन्दर शैली-प्रयोग इस गद्यगीत में भी है: "वह मैं हूँ मेरे प्रियतम! वह मैं हूँ, वह मैं हूँ!" तथा "केवल मैं! केवल मैं!! 'केवल मैं!!!"

आदिम भय :

'सृष्टि-संकल्प' का दूसरा गद्यगीत 'आदिम भय' है। इसमें राधा अपने अलौकिक दिव्य रूप के साथ-साथ लौकिक छाया रूप का परिचय देती है। वह कहती है कि यद्यपि वह प्रकृति-रूपा है, समस्त ब्रह्माण्ड में वही व्याप्त है, कण-कण उसका है, उसीका लीलातन भयानक समुद्र, उत्तुंग गिरि-शिखरों और भयावह-से-भयावह प्रकृति-रूपों में बिखरा हुआ है, तथापि उसका छाया तन भी है—लौकिक लीला का द्योतक छायातन। यह कभी-कभी जो अज्ञात भय, संशय व्याप जाता है, वह इसी छायातन को व्यापता है!

अगर यह निखिल सृष्टि........................भय क्यों लगता है?

राधा अपने प्रिय कनु के प्रति कहती है: 'यदि यह समस्त सृष्टि मेरा ही लीला-शरीर है जिसे तुम अपनी आनन्द-क्रीड़ा के लिए, अपने आस्वाद के लिए रचते हो; यदि ये ऊंचे-ऊंचे वर्फीले पहाड़ मेरे ही सफेद चांदी-सी ढलान वाले गोरे कंधे हैं जिन पर तुम्हारा आकाश-जैसा चौड़ा, नीला-सांवला और तेजस्वी माथा टिकता है; यदि यह चांदनी में—पूर्णिमा में—हिलोरें लेता हुआ महासागर मेरे ही आवरणहीन शरीर का उतार-चढ़ाव है; अगर ये उमड़ती हुई मेघ-घटाएँ मेरी ही झूलती घुंघराली वे जुल्फ़ें हैं जिन्हें तुम अक्सर प्यार से बिखेर कर मेरे पूर्ण विकसित चंदन-चर्चित स्तनों या पूर्ण विकसित फूल से कपोलों को ढक देते हो; अगर ये सांझ के समय पश्चिम की ओर झरते हुए

अजस्र सतत् प्रवाहित होने वाले झरने मेरी ही सुनहरी जंघाएं हैं; और अगर यह रात मेरी गहन गंभीरता है और प्रकाशमान दिन मेरी हँसी है, फूल मेरे कोमल स्पर्श हैं और हरियाली मेरा शीतल, कोमल आलिंगन है, तो यह तो बताओ मेरे लीला-साथी, कभी-कभी 'मुझे' अपने ही इन रूपों से भय क्यों लगता है ? मैं अपने को ससीम क्यों समझ बैठती हूँ, मेरा अपना असीम विराट् अलौकिक रूप मुझे क्यों विस्मृत हो जाता है ?

अक्सर आकाश गंगा के....................मुझे डराते क्यों हैं ?

राधा कहती है कि यदि चांद, सूरज, समस्त ब्रह्माण्ड, आकाश-गंगा, प्रकृति के सब रूप मेरे हैं तो प्रलय के समय होने वाले अनन्त संहार को देखकर मैं भयभीत क्यों हो जाती हूँ ? राधा अपने कनु के प्रति कहती है : "अक्सर प्रलय-काल में आकाश-गंगा के सूने किनारों पर खड़े होकर जब मैंने अनन्त शून्य आकाश में चमकते हुए उल्का पिण्डों और असंख्य सूर्यों को टूटते और अंधकारपूर्ण कोहरे की गुफाओं में पंख टूटे जुगनुओं की तरह विलीन होते देखा है, तो मैं भय से काँप कर वहाँ से लौट आई हूँ। प्रकृति का यह प्रलयंकारी रूप मुझे क्यों डराता है प्रिय ? मैं क्यों डर जाती हूँ अपने ही इस प्रकृति-रूप से ? क्या आकाश-गंगा मेरी मांग नहीं है ? क्या चांद-सितारे मेरे शीश फूल नहीं हैं ? फिर यह भय कैसा ? क्या यह भय मेरे छाया-तन को लगता है ?

और अक्सर जब मैंने..........................बिन्दु नहीं है ?

राधा अपने छायातन को लगने वाले आदिम भय का वर्णन करती हुई अपने प्रिय कनु से कहती है : "अक्सर जब मैंने प्रलय-काल में सृष्टि के विनाश को देखा है तो सृजन, पालन और संहार रूप त्रिगुणात्मिका होते हुए भी मैं अपने मन में भयभीत क्यों हो जाती हूँ। प्यारे कनु, अक्सर जब मैंने चन्द्रलोक के विशाल अज्ञात ज़ले-झुलसे पहाड़ों की विकट और डरावनी घाटियों में अज्ञात दिशाओं से उड़ कर आने वाले धुँए के ढेरों को टकराते और आग्नेय उल्का-वृष्टि से पत्थर की चट्टानों को घायल होते और फूल की तरह झरते और बिखरते देखा है तो मुझे इस भयंकर दृश्य से भय क्यों लगा है ? और मैं इस विनाश के ताण्डव नृत्य से लौट क्यों आई हूं ? प्यारे, क्या चन्द्रमा मेरे ही माथे का सुहाग का टीका नहीं है ? क्या चन्द्रलोक मेरा ही लीलातन नहीं है ? क्या सृजन के साथ-साथ संहार के पल मेरे नहीं हैं ? मुझे डर क्यों लगा मेरे बन्धु ?

और अगर ये..मेरे प्रिय।

कनुप्रिय राधा अपने प्यारे कनु से आगे प्रश्न करती है : प्यारे कनु, यदि ये ब्रह्माण्ड के समस्त रहस्य मेरे हैं, यदि सृजन, पालन, और संहार की समस्त क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं मेरी हैं, और अगर तुम्हारा संकल्प, तुम्हारी इच्छा मैं हूँ, अगर इस समस्त सृष्टि में मेरे सिवा यदि कोई है तो तुम, तो प्यारे मैं डरती किससे हूँ ? यह अपने से ही भय क्यों लगता है ? मेरे छायातन की यह माया कैसी है ?

और अगर यह चन्द्रमा.................................मेरे बन्धु !

कनुप्रिया राधा अपने आदिम भय का वर्णन करती हुई कहती है : प्यारे कनु, यदि समस्त सृजन का आधार मैं हूँ यदि चाँद, सूरज, तारे समस्त ब्रह्माण्ड मेरा ही निर्माण हैं, सारे प्रकृति रूपों में मैं ही हूँ, अगर यह चन्द्रमा मेरी उंगलियों के पोरों की छाप है और मेरे ही इंगित पर घटता-बढ़ता है, और यदि यह आकाश गंगा मेरी ही वेणी के शीशफूल हैं और मेरे एक इशारे पर इसके असंख्य उल्कापिण्ड और ब्रह्माण्ड हिल-डुल उठते हैं और अपनी दिशा बदल देते हैं तो मेरे बन्धु, मुझे डर किससे लगता है ? इस भय का कारण क्या है ? अपने ही लीलातन से मेरा यह छायातन क्यों डर से काँप उठता है ?

कहाँ से आता है यह भय..................और मैं भयभीत हूँ !

कनुप्रिय राधा अपने आदिम भय का वर्णन करती हुई अपने प्यारे कनु से प्रश्न करती है : मेरे लीलाबन्धु, यह भय कहाँ से आता है ? यह भय मेरे इन बर्फानी पहाड़ों पर, महासागरों पर। चन्दन-वनों और उपवनों पर, मेरे सुनहले झरनों पर, मेरे समस्त प्रसन्न और खिले हुए लीलातन पर कोहरे की तरह, काले नाग की तरह फन फैला कर और कुण्डली बाँध कर बैठ गया है। यह भय का सर्प, यह भय का कोहरा कहाँ से आता है, मेरे नाथ ? यह अविद्या माया का जाल कैसा है कनु ?

मेरे और तुम्हारे प्यार की तीव्र क्रीड़ा-विलास की बेला में भय का यह जाल किसने फेंका है ? देखो न प्यारे, इस भय के जाल में उलझ कर मैं किस प्रकार शीतल चट्टानों पर पछाड़ खाती हुई नंगी जल परी की तरह छटपटा रही हूँ। और मैं प्रलय की इस बाढ़ में भय से डगमगाई कितनी बुरी तरह भीग गई हूँ। मेरे भीगें वाले केशों से काई और सिवार लिपट गये हैं और भय के कारण मेरी मुट्ठियों से समुद्री पुखराज और पन्ने छिटक गये हैं। मैं इतनी भयभीत क्यों हो गई हूँ ?

सुनो मेरे बन्धु..................................मेरे मित्र ?

'सृष्टि-संकल्प' के 'आदिम भय' शीर्षक गद्यगीत की इन अन्तिम पंक्तियों में कनुप्रिया राधा अपने कनु से आदिम भय के सम्बन्ध में प्रश्न करती हुई कहती है : मेरे लीला बन्धु, अगर यह समस्त सृष्टि अपने कोमल-भयंकर सभी रूपों में मेरा ही प्रतिरूप है, मेरा ही लीलातन है, सब रूपों में मैं ही हूं, तुम्हारे आनन्द आस्वाद के लिए मेरे ही रूप में सृष्टि का यह प्रसार हुआ है, तो प्यारे मित्र, यह जो भयभीत छायातन है वह किसका है ? क्यों है ? यह भ्रमजाल कैसा है ? किस लिए है ? क्या यह तुमने ही अपने आनन्द प्रसार के लिए छायातन रूप नहीं चाहा है ?

वस्तुतः राधा इस गद्यगीत में अपने अलौकिक विराट् प्रकृति रूप के साथ-साथ लौकिक मायामय रूप की वास्तविकता का वर्णन करती है। राधा का लीलातन विराट् प्रकृति के रूप में अलौकिक असीम और दिव्य है, तो वृन्दावन के कुन्ज-निकुन्ज में कृष्ण के साथ ब्रज-बिहार करने वाली कनुप्रिया राधा का छायातन लौकिक और ससीम है। इसी तथ्य का उद्घाटन इस गीत में है।

विशेष : १- प्रस्तुत गीत में भी श्री धर्मवीर भारती ने सुन्दर उपमाओं का प्रयोग किया है। जैसे : 'गगन सा चौड़ा और सांवला और तेजस्वी माथा।' प्रकृति रूपा राधा के कुछ अंगों का उपमानगत् प्रयोग भी बहुत सुन्दर है। जैसे :

अजस्र-प्रवाही झरने
मेरी ही स्वर्ण-वर्णी जंघाएं हैं।

... ...

हिलोरें लेता हुआ महासागर
मेरे ही निरावृत जिस्म का
उतार-चढ़ाव हैं
अगर ये उमड़ती हुई मेघ घटाएँ
मेरी ही बल खाती हुई अलकें हैं।

... ...

और अगर यह रात मेरी प्रगाढ़ता है
और दिन मेरी हँसी
और फूल मेरे स्पर्श
और हरियाली मेरा आलिंगन।

सौन्दर्य का यह विपरीत वर्णन बड़ा ही सार्थक है।

कुछ उपमाएँ बहुत ही उत्तम बिम्ब प्रस्तुत करती हैं। जैसे :

जब मैंने अथाह शून्य में
अनन्त प्रदीप्त सूर्यों को
कोहरे की गुफाओं में पंख टूटे
जुगनुओं की तरह रेंगते देखा है।

सच तो यह है कि सारे गीत में सुन्दर उपमाओं की झड़ी लगा दी है। निम्न उपमाएँ भी सुन्दर बिम्वात्मक हैं :—

वज्र की चट्टानों को
घायल फूल की तरह बिखरते देखा है।

... ...

कहाँ से आता है यह भय
जो मेरे इन हिम शिखरों पर
कोहरे की तरह
फन फैला कर
गुँजलक बांध कर बैठ गया है।

इन अन्तिम पंक्तियों में भय अमूर्त का सुन्दर मूर्तीकरण हुआ है। अमूर्त भय के लिए कोहरे और कुण्डली मारे फन फैलाए बैठे हुए साँप के मूर्त उपमान सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत करते हैं।

निम्न पंक्तियों में जलपरी की उपमा भी बहुत सुन्दर है :

शीतल चट्टानों पर निर्वसना जलपरी की तरह
छटपटा रही हूँ।

इस प्रकार समस्त गीत में अनुठी उपमान योजना कवि की अद्भुत कल्पना-शक्ति की परिचायक है। भाषा शैली में प्रवाह, सुबोधता आदि गुण पाए जाते हैं।

केलि सखी :

'सृष्टि-संकल्प' खण्ड के तीसरे गद्यगीत 'केलि सखी' में कवि धर्मवीर भारती ने राधा के उद्दाम केलिक्रीड़ा-विलास का वर्णन किया है। अपने प्रगाढ़ प्यार, महामिलन की इस बेला में वह अपने प्रिय कनु में डूब कर उसकी गोद में शिथिल और प्रसुप्त हो जाना चाहती है।

आज की रात……………………………और मैं कुछ नहीं कह पाती !

राधा आज समस्त भय संशय को त्याग कर महामिलन के लिए प्रस्तुत है। आज उसे चारों ओर अभिसार और मिलन के संकेत मिल रहे हैं। वह प्रिय कनु का आवाहन करती हुई कहती है : प्यारे कनु, आज की रात में चारों ओर से अभिसार और मिलन के संकेत आ रहे हैं। प्रकृति का हर रूप भावों को उद्दीप्त कर रहा है। हवा का हर झोंका मादक स्पर्श से सारे शरीर को झनझना जाता है और मुझे ऐसा लगता है कि मैं इस घन-अन्धकार में डूब जाऊँ। ऐसा प्रतीत होता है कि चारों तरफ फैला हुआ अन्धेरा ही मेरे शिथिल गुलाब जैसे शरीर को पी जाने के लिए तैयार बैठा है। न जाने क्यों मुझे ऐसा महसूस होने लगा है कि ये मेरे पाँव, माथा, पलकें, होठ, मेरा अंग-अंग जैसे मेरा नहीं है, मेरे बस में नहीं हैं। जैसे मैं बे-बस हूँ, मानो ये सब अंग एक-एक घूंट की तरह इस अन्धकार के गले में उतरते जा रहे हैं, खोते जा रहे हैं। आज मुझे इस प्रलय-कारी अन्धेरे से डर नहीं लगता, मैं महामिलन की प्रलय महाप्रलय के लिए प्रस्तुत हूँ। वह आदिम-भय, वह अकारण तर्कहीन भय जो मुझे तुम से बहुत दूर ले गया था। शायद इसलिए कि मुझे दुगने वेग के साथ तुम्हारे निकट ले आए, आज नहीं रहा है। प्यारे कनु, संम्भवतः वह भय भी आज काँप उठा है। शायद उसी की कांपती उंगलियाँ मेरे एक-एक बन्धन को ढीला करती जा रही हैं और मैं विवश हूँ, कुछ कह नहीं पाती। सारे बन्धन, सारी बाधाएँ टूट चुकी हैं और मैं तुम्हारी केलिसखी महामिलन के लिए—उद्दाम क्रीड़ा के लिए प्रस्तुत हूँ।

मेरे अधखुले होठ…………………………………………बेचैन।

अपने महामिलन की बेला का वर्णन करती हुई कनुप्रिया राधा कहती है कि आज की रात महामिलन की रात है। चारों ओर से अभिसार और मिलन के संकेत आ रहे हैं। प्रकृति की मादकता भावोद्दीपन का कार्य कर रही है। आज मैंने सभी भय, संशय त्याग दिए हैं और महामिलन के लिए प्रस्तुत हूं। अपने प्रिय कनु को वह कहती है : मेरा अंग-अंग आज शिथिल हो उठा है। मैं अपने बस में नहीं हूँ। मेरे अधखुले होठ वासना की उत्तेजना से कांपने लगे हैं, सारे जिस्म में एक अजीब-सी जलन उठ रही है, मेरा कंठ सूख रहा है। मेरी पलकें आधी मुंद आई हैं—एक अजीब नशा-सा, एक विचित्र निष्प्राणता छा गई है, जैसे शरीर निर्जीव हो गया हो !

उत्तेजना वश मैंने तुम्हें अपने बाहुपाश में बांध लिया है, और शक्ति-भर जकड़ती जा रही हूँ। तुम्हें अपने निकट—और निकट—बिल्कुल निकट खींच रही हूँ ताकि तुम्हारी सांसें मुझ में मिल जाएं, तुम्हारे प्राण मेरे जिस्म के कण-कण में प्रविष्ट हो जायं। ताकि तुम्हारा रक्त मेरी शिथिल मृतप्राय रगों में दौड़कर मुझ में पुन: प्राणों का—जीवन का—संचार कर सके।

और प्यारे कनु, मेरा यह कसाव, मेरा यह आलिंगन, मेरी यह जकड़ निर्मम है। मेरा यह प्यार अंधा है—उन्मादभरा है। मेरी ये बाहें नागवधू की नागफाँस की तरह तुम्हें कसती जा रही हैं। मेरी यह केलिक्रीड़ा अद्‌भुत है। नागवधू की ही तरह आज मेरी दंत-पंक्ति तुम्हारे वक्ष, तुम्हारी बाहों, कंधों, होठों और अंग-अंग पर शुभ नीले-नीले चिह्न छोड़ रही है। मैं व्याकुल हो उठी हूँ और तुम्हें भी उत्तेजित कर डालूंगी!

लो, तुम भी व्याकुल हो उठे हो! उत्तेजित हो गये हो। तुम मेरी चोटों से ऐसे ही बेचैन हो उठे हो जैसे एक छोटा-सा प्रवाल-द्वीप धूप में कसे गहरे समुद्र की ऊंची, तीखी, लहराती लहरों के कठोर थपेड़ों से विक्षुब्ध और बेचैन हो उठता है! इस महाकेलि-क्रीड़ा के लिए तुम व्यग्र हो उठे हो!!

उठो मेरे प्राण......................और मैं अपने से ही भयभीत हूँ।

कनुप्रिया राधा कृष्ण की केलि-सखी है। वह अपने प्यारे कनु के साथ क्रीड़ारत है। आज उसका आदिम भय समाप्त हो गया है। महामिलन का इस वेला में वह अपने कनु में डूब जाना चाहती है। आज उसे प्रलय का भय नहीं। भले ही (सृष्टि डूब जाय) वह अपनी केलिकथा को अन्तिम सोपान तक पहुंचा कर रहेगी। केलिरत राधा अपने प्रिय कनु के प्रति कहती है: "उठो, मेरे प्राण उठो। बाहर फैला हुआ घना अन्धकार, गरजता हुआ सागर, जो अब तक मेरे ही अपने रूप थे और जिन से मैं भय खाती थी, आज मुझे नहीं चाहिये। उठो, यह रोशनदान बन्द कर दो, बाहर फैला-फैला समुद्र मेरा ही लीलातन है, पर मैं आज उधर देखना नहीं चाहती। यह घन-अन्धकार में झूमती उल्का-पिण्डों, चान्द-सितारों, ग्रहों या सौर-मण्डल की दीपमाला यद्यपि मैं ही हूँ और असंख्य ब्रह्माण्ड, समस्त दिशाएँ, अजस्र बहता हुआ समय सब मैं ही हूँ, पर आज मैं इन सबको भूल जाना चाहती हूँ, मैं अपने को भूल जाना चाहती हूँ। उठो और यह झरोखा बन्द कर दो, क्योंकि ऐसा लगता है कि अन्धेरा भी आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा है। यह वातायन बन्द कर दो, क्योंकि

हवा का शीतल झोंका भी अब शरीर को आघात पहुँचा रहा है। मैं अपने इन सब प्रकृति-रूपों से दूर रहना चाहती हूँ। मैं अपने से ही भयभीय हूँ।"

लो मेरे असमंजस..................................डूब न जाऊँ।

सभी द्विधाओं, भय, संशय आदि से मुक्त कनुप्रिया राधा अपनी महाक्रीडा की इस वेला में सर्वथा तन्मय अपने प्रिय कनु के वक्ष में डूब जाना चाहती है। वह न केवल अपने बाह्य प्रकृति-स्वरूप से विलग हो गई है अपितु जिस्म की स्थूलता के भार से भी मुक्त हो गई है। वह अपने प्यारे कनु के प्रति कहती है: "लो अब मैं पूर्ण मुक्त हो गई हूँ। मेरी द्विधा समाप्त हो गई है। मेरा असमंजस तुम बन गए हो। मैं जिस्म के भार से भी मुक्त हो गई हूँ। मेरा अंग-प्रत्यंग स्थूलता त्याग कर सूक्ष्म हो गया है, भावमय हो गया है। मेरी आँखें अब स्थूल आंखें नहीं हैं, केवल प्रतीक्षा के क्षण हैं अर्थात् आँखों की सार्थकता चरम-साक्षात्कार के क्षणों की प्रतीक्षा में है और मेरी बाँहें-बाँहें नहीं हैं, केवल तुम्हें अपने निकटतम खींच लाने वाली पगडंडियाँ हैं। यही नहीं, मेरा यह सारा शरीर हल्का गुलाबी, गोरा, कोमल, सफेद चमकने वाली धूप-छांही रंग की सीपी-जैसा जिस्म अब जिस्म नहीं है। वह केवल एक आवाहन है, केवल एक पुकार है।

उठो, मेरे समाधान, मेरे प्रश्नों-समस्याओं के उत्तर, प्यारे कनु, उठो, और ये वातायन के पट बन्द कर दो और कह दो इस सागर से कि इसकी ऊँचीं-ऊँची लहरें द्वार से टकरा कर लौट जाएँ। और कह दो इन दिशाओं से कि आज हमारे इस महामिलन में घुल जाएँ, मिट जाएँ।

और प्यारे कनु, कह दो समय के इस अचूक धनुर्धारी पक्षी से, कि अपनी कमान पर चढ़े हुए तीर उतार कर तरकस में रख ले और तोड़ डाले अपना धनुष, और अपने पंख समेट कर चुपचाप मेरे द्वार पर रुक जाए, ठहर जाए, प्रतीक्षा करे। समय की समस्त गति तब तक रुक जाए जब तक मैं अपनी प्रचण्ड तीव्र केलि-क्रीड़ा के अस्थायी विराम तक न पहुँच जाऊँ; जब तक मैं अपने होठों से तुम्हारे सीने पर लेख न लिख न दूं, और इस क्रीड़ा से थक कर तुम्हारी शिथिल बांहों में डूब न जाऊँ। सृष्टि नहीं रहती है तो न रहे, आज मैं पूरा खेल खेलना चाहती हूँ।

आओ मेरे अधैर्य........................तुम्हारी अन्तरंग केलि सखी।

कनुप्रिया राधा आज अपनी केलि-क्रीड़ा का अन्तिम खेल खेलना चाहती

है। वह अपने प्यारे कनु के वक्ष में डूब जाना चाहती है। उसने समय के रथ को रुकवा दिया है। सृष्टि नहीं रही है, दिशाएँ मिट गई हैं। आज वह महा-मिलन का त्यौहार मनाने को प्रस्तुत है। अपने प्यारे कनु का आवाहन करती हुई वह कहती है : "आओ मेरे अधीर प्रिय, मैं बेचैन हूँ। दिशाएँ मिट गई हैं, सृष्टि लय हो चुकी है। समय मेरे केश-पाश में बन्ध चुका है। महाशून्य छा गया है। इस समस्त सृष्टि के असीम विस्तार—इस महाशून्य में तुम्हारे साथ मैं हूं, केवल मैं—तुम्हारी अन्तरंग केलिसखी, तुम्हारी चिरलीला-सहचरी! मैं और तुम बस दोनों हैं। शेष कुछ नहीं रहा। आओ प्राण, तुम्हारी चन्दन-बाहों में मैं शिथिल बेसुध सो जाऊँ, खो जाऊँ! यही हमारी केलि-क्रीड़ा का अस्थायी विराम-स्थल है।

विशेष : १. प्रस्तुत गद्यगीत में कवि धर्मवीर भारता ने राधा की केलि-कथा का मार्मिक वर्णन किया है। राधा ही कनु की अन्तरंग केलिसखी है। महामिलन का यह वर्णन अलौकिक अर्थ भी प्रदान करता है और जिस्म के आग्रह वाले कवि भारती लौकिकता से भी चिपटे हुए हैं। राधा के उत्तेजना-पूर्ण उद्‌गार और उद्दाम आवाहन बड़े ऐन्द्रिक हैं। गीत की लौकिक ध्वनि पर्याप्त प्रखर है। इसीसे यह गद्यगीत संयोग श्रृंगार से सम्बन्धित है।

२. इस गद्यगीत में भी कवि-भारती ने उपमाओं और लाक्षणिक प्रयोग से सुन्दर बिम्ब-विधान किया है। 'गुलाब तन' 'एक-एक घूंट की तरह', 'और मेरी बांहें नाग-वधू की गुँजलक की भांति कसती जा रही हैं।',

> और तुम व्याकुल हो उठे हो
> धूप में कसे
> अथाह समुद्र की उत्ताल, विक्षुब्ध
> लहराती लहरों के निर्मम थपेड़ों से—
> छोटे-से प्रवाल-द्वीप की तरह
> बेचैन
>
> ... ...
>
> हलका, गुलाबी, गोरा, रुपहली धूप छाँव-
> वाली सीपी-जैसा जिस्म

आदि उपमा-प्रयोग बहुत ही सुन्दर और बिम्बात्मक हैं।

३. समय का मूर्तिकरण और मानवीकरण लाक्षणिक रूप में इन पंक्तियों में सुन्दर है :

और कह दो समय के अचूक धनुर्धर से
कि अपने शायक उतार कर
तरकस में रख ले
और तोड़ दें अपना धनुष अपने पंख समेट कर द्वार पर
चुपचाप प्रतीक्षा करे :

४. इस गीत में भी राधा-द्वारा कृष्ण के लिए कई नये सुन्दर सार्थक सम्बोधनों का प्रयोग हुआ है।

'उठो मेरे प्राण' ! 'लो मेरे असमंजस', ! 'उठो मेरे उत्तर !' 'आओ मेरे अधैर्य !' आदि सुन्दर सम्बोधन हैं।

इतिहास-खण्ड

विप्रलब्धा :

'कनुप्रिया' के चतुर्थ खण्ड 'इतिहास' में सात गद्यगीत हैं। प्रथम गद्यगीत 'विप्रलब्धा' शीर्षक है। इसमें कवि धर्मवीर भारती ने अनेक अनूठी उपमाओं के प्रयोग-द्वारा राधा की विरह-व्यथा का मार्मिक चित्रण किया है।

बुझी हुई..............................उठे हुए मेले-सा—

राधा अब विप्रलब्धा हो गई है। उसका केलिसखा, उसका लीला-बंधु कनु इतिहास के सूत्रों में बँधकर जीवन के कर्त्तव्यों, नियमों, राजनीति, शासन, युद्ध, धर्म, नीति आदि में उलझ गया है। वह ब्रज के कुंज-निकुंज, यमुना-तट, कदम्ब-पादप, बाँसुरी, गाय, राधा—सबको छोड़कर चला गया। वह नागरिक और शासक बन गया। राधा उसकी याद में तड़पती रह जाती है, पर वह अपने जीवन-कर्त्तव्यों में उलझकर उसे भूल गया है। राधा विरह-व्यथा और पूर्व-स्मृतियों के बोझ से दबकर कृशकाय और म्लान-मुख हो जाती है।

अपनी व्यथा-कथा को व्यक्त करती हुई राधा कहती है : "कलतक कृष्ण के संयोग (आश्लेष) में मेरा जो जिस्म जादू-भरा था, सूरज की तरह तेजस्वी और स्फूर्तिमय था, वही अब बुझी हुई राख की तरह तेजहीन, स्वर-टूटे हुए गीत की तरह लड़खड़ाता हुआ, डूबे हुए चाँद की तरह म्लान और अंधकारमय, रिक्त पात्र की तरह निरर्थक और बीते हुए क्षण की तरह मूल्यहीन हो गया है! सब गुड़-गोबर हो गया है। विरह-व्यथा ने जीवन नीरस और निरर्थक बना दिया हैं।

कल तक जो तन हरा-भरा, आकर्षणपूर्ण एवं तेजोदीप्त था, आज वही जूड़े से गिरे हुए बेले के फूल की तरह टूटा और मुरझाया हुआ है। आज वह जीवन और तन, जो कलतक रागरंग से पूर्ण था, वियोग की इन घड़ियों में बीते हुए उत्सव की तरह सुनसान और उठे हुए मेले की तरह उजड़ा हुआ है।

मेरा यह जिस्म..........................दोहराता हुआ !

'कनुप्रिया' के 'इतिहास' खण्ड के अन्तर्गत 'विप्रलब्धा' राधा अपनी विरह व्यथा प्रकट करती हुई कहती है कि हे कनु, तुम्हारे संयोग में मेरे जीवन में जो बहार छाई थी, मेरे तन में जो तेज और स्फूर्ति व्याप्त थी, वह अब सब समाप्त हो चुकी है। यह जीवन वीरान हो गया है, तन हतप्रभ हो मुरझा गया है।

मेरा यह जिस्म एक वीराना-सा बनकर रह गया है। यह टूटे-उजड़े अंतःपुर के खण्डहरों में बचा हुआ एक मणियों-जड़ा दर्पण-सा रह गया है, जिसे आधीरात के समय एक प्यासा साँप अपने बाहुहीन ज़हर भरे कसाव से कुण्डली मार कर जकड़ लेता है—अपनी फांस में बाँध लेता है ! कहने का तात्पर्य यह कि मेरे जिस जिस्म को पहले संयोगावस्था में कृष्ण की शीतल चंदन-बाहों का कसाव प्राप्त होता था, वह अब अभाव की इस वेला में जहरीले सांपों से जकड़ा हुआ प्रतीत होता है। प्रिय के अभाव में— उसके चंदन-कसाव के अभाव में रात सांप की तरह काट खाने वाली प्रतीत होती है।

वे दिन अब नहीं रहे ! रह गई हूँ केवल मैं और मेरा यह वीरान तन और उन दिनों की याद ! वह याद भी एक दर्पण में धुँधले से प्रतिबिम्ब की तरह बार-बार अपने को लहराती और दोहराती हुई मन को बींध रही है।

कौन था वह..................................और याद है !

अपनी ब्रजकेलि के बाद कृष्ण अपनी प्रिया राधा को छोड़कर मथुरा-द्वारिका चले जाते हैं और सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक कर्त्तव्यों में ऐसे व्यस्त हो जाते हैं कि ब्रज और अपनी प्रिय राधा को भूल ही जाते हैं। कृष्ण के वियोग में राधा अत्यन्त दुखी होती है। जो कनु उसका अपना था, जिसकी शिथिल चंदन-बाहों में वह बेसुध डूब जाती थी, वही इतना निठुर निकला कि राधा के भूल ही बैठा है। कनुप्रिया राधा दुःख, क्षोभ, व्यंग्य-उपालम्भ के भावों में डूबी कनु का स्मरण करती हुई उससे प्रश्न करती है : प्यारे कनु, बताओ तो वह कौन था, जो तुम्हारे बाहु-पाश में बँधकर गौरव पाता था और अपनी उन्मादकारी केलि-बेला में बड़े गर्व के साथ समय को चुनौती देता था—समय के भागते हुए घोड़ों को अपने द्वार पर बांध लेता था ? क्या वह मेरा यही जिस्म नहीं था, जिसमें तुम्हें मुग्ध कर डालने की शक्ति थी और जो अब बुझी हुई राख-सा रूखा और तेजहीन हो गया है !

कौन था वह प्यारे, जिसकी घनी, घुंघराली-जुल्फों में सारा जगत् बँधा और खिंचा आता था ? जिसके आगे संसार की सारी गतियाँ रुक जाती थीं, नत मस्तक और पराजित थीं ? जिसकी अलकों का जादू अद्‌भुत था, वह कौन था ?

आज भले ही तुम हमारे उस प्रगाढ़ प्रणय को भूल जाओ, उसे महत्त्वहीन कोरी भावुकता समझो' पर वास्तविकता यह है कि चरम साक्षात्कार का वह एक क्षण तुम्हारे इतिहास-निर्माण के दीर्घकाल से अधिक महत्त्वपूर्ण, अधिक सशक्त और सार्थक था। प्यारे कनु, क्या वह मेरा प्यार, क्या वह मेरा महा-मिलन तुम्हारे इतिहास से बड़ा और महान् नहीं था ?

कनु प्यारे, जरा याद तो करो, वह तुम्हारी चंदन-बाहों में कौन बेसुध हो जाता था। वह कौन था, जो आकर्षण का केन्द्र-विन्दु था ? वह मेरा जिस्म जो कभी तुम्हारे लिए जादू था, सूरज था, दिव्य था और मंत्र की तरह पवित्र और प्रभावकारी था, क्या हो गया ?तुम उसे क्यों भूल बैठे ?और मुझे वे क्षण क्यों याद हैं ? वह कंचन-काया कहाँ चली गई ? अब केवल मैं अकेली रह गई हूं, यह मेरा उजड़ा तन है और उन दिनों की सालने वाली याद है !

मंत्र-पढ़े बाण से..................................व्यथा-भरी गूंज-सा।

विरह-विदग्धा राधा अपनी व्यथा-कथा कहती हुई अपने प्यारे कनु को उपालंभ देती है : प्यारे कनु, तुम तो समय के धनुर्धर से छूटे मंत्र पढ़े बाण की तरह निकलकर अपने लक्ष्य, अपने इतिहास-निर्माण के उद्देश्य पर चले गये, मैं धनुष की डोरी की तरह काँपती रह गई ! मेरे जिस्म-रूपी जिस डोरी पर तुम टिके रहते थे, वह अब रिक्त काँपती हुई शेष रह गई है। मैं यहाँ अकेली पड़ गई हूं। जो अब अतीत की कहानी बन गया है—हमारा जो मिलन अब बीती बात हो गया है, मैं अभी भी उसी की यादों में डूबी हुई हूं। मैं अब भी तुम्हारी उन चंदन-बाहों के धोखे में कसी हुई हूं। वे आलिंगन मुझे अभी तक स्मृति में जकड़े हुए हैं। वह कितना बड़ा छल था ! पर अभी भी मैं उसी स्मृति में डूबी हूं।

अपनी जिन रूखी, लहराती, घुंघराली अलकों में मैंने काल की गति बाँध ली थी, जिनका मोहक आकर्षण अद्‌भुत था, वे ही मेरी काली जुल्फें अब वियोग-अवस्था में मेरे लिए नाग-पाश बनी हुई हैं और रोज-रोज़, क्षण-क्षण मुझे बार-बार डस रही हैं ! मैं क्या करूँ, प्यारे कनु ? वे बहार के दिन हवा

हो गए हैं। अब तो केवल मैं अकेली रह गई हूं, मेरा ठूंठ-सा यह जिस्म रह गया है और क्षण-क्षण संशय, भय से ग्रस्त हूं और मेरा यह उजड़ा जिस्म रह गया है—बुझी हुई राख में छिपी चिगारी-सा तेजहीन महत्त्वहीन, शक्तिहीन ! और यह तन वैसा ही अर्थहीन, मूल्यहीन शेष रह गया है जैसे किसी रीते हुए बर्तन में आखिरी बूंद रह जाती है और मेरा यह जीवन, मेरा यह तन एक अभाव की टीस-मात्र बनकर रह गया है—व्यथा की ऐसी टीस, जो भाव के बाद अभाव की—प्राप्ति के बाद खो देने की चीख-पुकार बनी हुई है।

विशेष—(१) प्रस्तुत गद्यगीत से कवि धर्मवीर भारती ने राधा की विरह-व्यथा का मार्मिक चित्रण किया हैं। स्मरण, उपालंभ, संशय, शोक आदि संचारी भावों का अच्छा प्रकाशन हुआ है।

(२) इस गद्यगीत में उपमाओं की अनूठी माला पिरोई हुई है। उपमाएँ एक-से-एक बढ़िया और प्रायः मौलिक हैं। विरह-दग्ध जिस्म के लिए ये उपमाएं कैसी अनूठी माला में जड़ी हैं—

> **बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चांद,**
> **रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण-सा—**
> **—मेरा यह जिस्म**
> ... ...
>
> **आज वह जूड़े से गिरे हुए बेले-सा**
> **टूटा है, म्लान है**
> **बीते हुए उत्सव-सा, उठे हुए मेले-सा—**
> ... ...
>
> **—बुझी हुई राख में छिपी चिनगारी-सा**
> **रीते हुए पात्र की आखिरी बूंद-सा**
> **पाकर खो देने की व्यथा-भरी गूंज-सा...**

ये सब उपमान सादृश्य से अधिक प्रभाव-साम्य प्रकट करते हैं। निम्न पंक्तियों में कनु के चले जाने और राधा के काँपती हुई रह जाने का वर्णन सुन्दर उपमा-योजना द्वारा हुआ है :

> **मन्त्र-पढ़े बाण-से छूट गये तुम तो कनु,**
> **शेष रही मैं केवल,**
> **काँपती प्रत्यंचा-सी**

उपमा के ये प्रयोग सुन्दर बिम्बात्मक भी हैं। एक बहुत बढ़िया बिम्ब निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत किया गया है :

मेरा यह जिस्म—
टूटे खण्डहरों के उजाड़ अन्तःपुर में
छूटा हुआ एक साबित मणिजटित दर्पण-सा—
आधी रात दंश-भरा बाहुहीन
प्यासा सर्पीला कसाव एक
जिसे जकड़ लेता है
अपनी गुंजलक में :

यादों के लिए यह बिम्ब भी कल्पना में चित्र प्रस्तुत करता है—"और याद है खाली दर्पण में धुंधला-सा एक प्रतिबिम्ब मुड़-मुड़ लहराता हुआ, निज को दोहराता हुआ!"

सेतु : मैं

'कनुप्रिया' के 'इतिहास' खण्ड का दूसरा गद्य-गीत है 'सेतु : मैं।' इस 'गद्यगीत' में राधा अपने प्रिय कनु को बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य-भरा उपालंभ देती है। राधा के जिस जिस्म को कनु पगडंडी कहते नहीं थकता था—पगडंडी जो कनु को राधा तक पहुँचाकर रीत जाती थी—उसी जिस्म को कनु ने लीलाभूमि ब्रज से महाभारत के युद्ध-क्षेत्र तक जाने के दुर्गम पथ का पुल बना लिया! राधा प्रश्न करती है : तो क्या वह केवल एक सेतु (पुल) थी ?

नीचे की घाटी..............................अलंघ्य अंतराल में!

राधा के साथ अनन्त प्रणय-विहार और केलि-विलास करने के बाद कृष्ण युद्ध और राजनीति में भाग लेने चले जाते हैं। फिर राधा की सुध नहीं लेते। राधा विरह में तड़पती रह जाती है। उसके मन में रह-रहकर इस बात का दुःख है कि जो कनु उसका अपना था, जिसके विलग होने की कोई संभावना नहीं थी, जो उसे अपनी वंशी-ध्वनि में रोज-रोज टेरता था, उसी कनु ने ब्रज से जाने के बाद कोई सुध नहीं ली। माना कि राधा के प्यार की लीला-भूमि नीचे की घाटी थी और अब कनु महाभारत-युद्ध के सूत्रधार बनकर पर्वत की ऊँची चोटी पर पहुँच गये हैं, पर क्या इस ऐतिहासिक परिवर्तन में—इस इतिहास-निर्माण में उसका कहीं कोई स्थान नहीं? क्या वह केवल एक सेतु

थी—लीला-भूमि की घाटी और युद्ध-क्षेत्र के ऊँचे पर्वत के बीच की अलंघ्य दूरी को पार करने का पुल-मात्र थी ?

राधा अपने प्रिय कनु के प्रति कहती है : "नीचे की घाटी अर्थात् लीला-भूमि ब्रज से ऊंचे पर्वत-शिखर अर्थात प्रसिद्ध इतिहास-पुरुष के पद पर तुम पहुंच गये हो। हा ! कितने दु:ख की बात है कि मेरे ऊपर ही पांव रखकर, मुझे ही सेतु बनाकर—मुझे मेरे प्यार को कुचलकर ही इतिहास तुम्हें मेरी बाहों से खींचकर ले गया।

सुनो प्यारे कनु, तुमसे केवल एक प्रश्न पूछना है, बताओगे? क्या मैं तुम्हारे लिए केवल एक सेतु—एक पुल थी ? केवल एक माध्यम थी—लीलाभूमि और युद्धक्षेत्र के बीच के अलंघ्य दुर्गम मार्ग को पार करने के लिए ? क्या इससे अधिक मेरा कोई महत्त्व नहीं, कोई योगदान नहीं ? क्या तुमने इसीलिए युद्ध-क्षेत्र की बुलंदी पर पहुंचने के बाद मुझे उसी प्रकार भुला दिया है, जैसे पार करने के बाद पुल को विस्मृत कर दिया जाता है—उसे सुनसान छोड़ दिया जाता है।

अब इन सूने शिखरों························वह चला गया।

विरह-दग्धा राधा अपने प्रिय कनु को उपालंभ देती हुई कहती है कि इतिहास-पुरुष बनकर कनु ने मुझे निपट भुला दिया है। वह प्रश्न करती है कि क्या उसका सम्बन्ध इतना ही कच्चा था ? क्या वह केवल एक सेतु थी—एक माध्यम थी युद्ध-क्षेत्र के ऊँचे शिखर पर पहुँचने का ! हा ! कितने दु:ख की बात है कि जाने वाला तो चला गया—बुलंदियों पर पहुँच गया, पर मेरा यह सेतु-सा जिस्म—इतिहास की सूनी पर्वत-चोटियों और मृत्यु का दृश्य प्रस्तुत करने वाली लीलाभूमि की घाटियों के बीच बने सुनहरी तारों वाले पतले पुल जैसा यह सूना, निरर्थक काँपता-सा मेरा जिस्म यहीं छूट गया है, यहीं रह गया है ! जाने वाला चला गया ! हाय ! विधि की यह कैसी विडम्बना है ! इस सूने निरर्थक काँपते-से सुनहरी जिस्म की अब क्या उपयोगिता है ? क्या कनु को इसका मोह केवल इसे त्यागने के लिए ही था ? क्या इतिहास में केवल कनु का ही स्थान है, राधा का कोई स्थान नहीं ? क्या उसका प्रेम एक भ्रांति मात्र था ? कौन देगा इन प्रश्नों का उत्तर ? जिसे जाना था, वह चला गया ! अब तो मैं—केवल मेरा यह सूना जिस्म तड़पते और कलपते रह गया है !

विशेष : १. इस मधुर गद्यगीत में सेतु का प्रतीकमय रूपक बांधा गया है जो कल्पना की मनोहारिता के साथ-साथ भावना की तीव्रता का हेतु बना है।

२. 'मेरी बाहों से इतिहास तुम्हें ले गया' में मानवीकरण का लाक्षणिक और बिम्बात्मक प्रयोग सुन्दर है।

३. 'सूने शिखरों से' सूने-नीरस इतिहास की बुलंदियों या प्रसिद्धियों का सुन्दर अर्थबोध होता है। इसी प्रकार कृष्ण विहीन लीला-भूमि को मृत्यु-घाटी का सुन्दर रूपक प्रदान किया गया है। अंतिम पंक्तियों में जिस्म की पुल से समानता का सुन्दर उपमा-प्रयोग हुआ है, जो बिम्बात्मक है।

उसी आम के नीचे :

अमित प्यार से बेसुध करके, राधा का प्यारा कनु उसकी सुध भुलाकर चला गया ! इतिहास ने कनु को राधा की बांहों से खींच लिया। राधा तड़पती रह गयी। वह विप्रलब्धा बन जाती है। इस उपेक्षा, अवज्ञा और विस्मरण से क्षुब्ध हो वह कनु को उपालंभ भी देती है। प्रस्तुत गीत में राधा की वेदना स्मृतियों के ज्वार-भाटे से और भी बढ़ जाती है। वियोगावस्था-के अन्तर्गत सम्बन्ध भावना का इस गीत में सुन्दर चित्रण हुआ है।

उस तन्मयता में.........................बड़ी शांति मिलती है।

कृष्ण के वियोग में राधा को संयोगावस्था के वे दिन स्वप्न के समान लगते हैं। वह हैरान है कि प्रगाढ़ मिलन के वे दिन अब स्मृति-शेष रह गये हैं। राधा अपने प्रिय कनु के प्रति कहती है : प्रगाढ़ प्रेम के उस उद्दाम मिलन, उस एकमेंक भाव से मिलन के क्षणों में जब तुम्हारे वक्ष में मुँह छिपाकर लज्जा से भरकर, मैंने आत्मसमर्पण करते हुए जो-जो कहा था—उसमें कुछ अर्थ था या नहीं—वह सार्थक था या नहीं, इसका तो मुझे पता नहीं : पता नहीं मैंने तुमसे जो कहा था कि इस मेरे सर्वार्पण की लाज रखना, वह कहाँ तक उचित था—सार्थक था भी कि नहीं !

और तुम्हारे संग चरम साक्षात्कार के क्षणों में, तुम्हारे द्वारा आम्रमंजरियों के बौर से भरी गई अपनी मांग के गर्व में जो मैंने सारे जागत् को अपनी बेसुधी के एक क्षण में लीन कर डालने का दावा किया था, तुम्हारे साथ केलि-क्रीड़ा से थककर सो जाने के साथ ही इस सृष्टि के विलय की जो चुनौती दी थी, आज न जाने वह क्यों स्वप्न-सी प्रतीत हो रही है : न जाने आज क्यों उसकी सत्यता के सम्बन्ध में प्रश्न-चिह्न लग गया है।

और वह प्रगाढ़ मिलन, उद्दाम क्रीड़ा ! —जिसकी याद अब भी मन में कसकती है, तन को कंपा डालती है, वह सब सपना था या हकीकत, अब मैं कुछ नहीं कह सकती !

पर प्यारे कनु, इतना जरूर है कि जब-जब मैं इस आम की डाली के नीचे आती हूं, जहाँ खड़े होकर तुम मुझे बाँसुरी में टेरकर बुलाया करते थे, तभी मुझे यहाँ आकर बड़ी शान्ति मिलती है। तुम्हारे अभाव की कसक भी जैसे इस शीतल प्रकृति की छाया में मधुर बन जाती है। स्मृतियों में डूब कर ही मैं शान्ति लाभ करती हूँ।

न,··· ··· ··· ··· ··· ··· **हिचक मिटा देता है !**

अपने प्रिय कनु के वियोग में राधा तड़पती रह जाती है। इतिहास उसके प्यारे कनु को उसकी बाँहों से छीन कर उसे लाँघ कर जीवन की ऊँची घाटियों में ले जाता है। राधा अपनी स्मृतियों में डूबी कभी विक्षुब्ध, कभी मन को बहलाती रह जाती है। 'उसी आम के नीचे' शीर्षक गीत की इन पंक्तियों में राधा के स्मृति-विरह का श्री धर्मवीर भारती ने मार्मिक चित्रण किया है।

जिस आम की डाली के नीचे खड़े होकर कृष्ण उसे अपनी बाँसुरी की धुन में टेरा करते थे, जहाँ वह अपने प्रिय कनु के साथ चरम साक्षात्कार के क्षणों का अनुभव किया करती थी, उसी आम की डाली के नीचे अब भी राधा जब-जब आती है तो परम शान्ति का अनुभव करती है। अपने प्रिय से मिलनावस्था की अनुभूतियों में खो जाती है। इतना स्वीकार करते हुए भी राधा अपने कनु के प्रति कहती है, "नहीं, मैं संयोगावस्था अथवा इस वियोगावस्था के बारे में कुछ नहीं सोचती। प्यारे कनु, मैं उन बहुत-सी पहली बातों को भी इस आम की डाली के नीचे आकर याद नहीं करती, जो मेरे और तुम्हारे प्यार की अमीट कहानियाँ बनी हुई हैं। यहाँ आकर मैं केवल चुपचाप बैठ जाती हूँ और केवल मेरी शिथिल, उदास भटकी हुई उंगलियाँ अनजाने ही मिट्टी में तुम्हारा वह नाम खोद कर लिख डालती हैं, जो मैंने प्रगाढ़ प्यार के क्षणों में स्वयं रखा था और जिसे हम दोनों के सिवाय दूसरा कोई नहीं जानता था।

किन्तु कनु, दूसरे ही क्षण ज्यों ही में सचेत होती हूँ तो अपनी उंगलियों की इस शरारत भरी चेष्टा पर चौंक उठती हूँ और उन्हीं उंगलियों से उस नाम को मिटा देती हूँ। तभी मेरा मन कई प्रश्न कर उठता है। प्रगाढ़ प्यार

भरे उस नाम को मिटाते हुए दुख क्यों नहीं होता ? कनु, मैं तुम से पूछती हूँ : तुम्हारा वह प्यारा नाम मिटाते अब दुःख क्यों नहीं ? क्या मेरा यह जिस्म, मेरी उँगलियां केवल दो यंत्रों का समूह मात्र हैं ?—एक मशीन दूसरी से बिल्कुल उल्टा काम करने वाली—एक अपने आप बिना पूछे वह नाम लिख देती है दूसरी बिना संकोच मिटा डालती है।

तीसरे पहर..............................बिखर गया है, कनु !

विरह-विदग्धा राधा अपनी पूर्व स्मृतियों में डूबी अपने दुःखी मन को बहलाती है। उसी 'आम के नीचे' शीर्षक इस गीत में राधा बताती है कि उसे इसी आम की डाली के नीचे बैठ कर शान्ति मिलती है जहां से उसका प्रिय कनु अपनी बाँसुरी में उसका नाम टेरता था। वहाँ बैठ कर राधा की उँगलियाँ अपने बेसुधपन में कृष्ण का वह प्यारा नाम लिख डालती हैं, पर दूसरे ही क्षण वास्तविकता का भान होते ही उँगलियाँ उस नाम को मिटा डालती हैं। जो हो, राधा को उस आम के नीचे बैठ कर अपार शान्ति मिलती है। वह कहती है : तीसरे पहर मैं चुपचाप यहाँ छाया में आ बैठती हूँ। वृक्ष की टहनियों और पत्तों से छनती हुई ताज़ी शीतल वायु नीचे उतर कर मुझ से अठखेलियाँ करने लगती है। मेरे कपोलों पर डोलती हुई मेरी जुल्फों से खेलने लगती है और मुझे बड़ा आनन्द आता है। मैं आँख मूंद कर बैठ जाती हूँ। कल्पनाओं की रंगीनियों में खो जाना चाहती हूँ। पूर्व स्मृतियां चक्कर लगाने लगती हैं और मैं सोचती हूँ कि उस दिन इसी समय बरसते पानी में जिस बालक को वर्षा से बचा कर मैं अपने आंचल में छिपाकर लाई थी, वही किशोर कनु अब इतिहास का प्रसिद्ध कृष्ण बन गया है। न जाने कितना-कितना महान हो गया है ! पर बहुत देर तक सोच भी तो नहीं पाती, कुछ समझ नहीं पाती, मेरे लिए तो केवल एक ही वास्तविकता है कि जहाँ प्यारे कनु ने मुझे असीम प्यार दिया था वहीं बैठ कर अनमनी-सी उँगलियाँ चलाती रहती हूँ। और कंकड़, पत्ते, पत्थर, तिनके, टुकड़े चुनती रहती हूँ। प्यारे कनु, जरा बताओ तो सही, क्या वस्तुतः तुम्हारे महान बनने से मैं लघु और तुच्छ हो गई ? क्या तुम्हारे बनने में मेरा कुछ टूट कर बिखर गया है ? अगर नहीं तो फिर मेरे वो दिन एकदम हवा कैसे हो गये ?

यह सब अब भी..............................अर्थ नहीं था ?

अपने प्रणय-विहार के 'उसी आम के नीचे' बैठी राधा इस विरहावस्था

में भी कुछ शान्ति पाती है। उसके मन में बार-बार यह प्रश्न आता है कि उसका वह इतना प्रगाढ़ प्यार एकदम बदल कैसे गया। उसका प्यार कनु इतिहास का प्रसिद्ध कृष्ण बन गया और ऐसा बदल गया कि उसकी जरा सुध नहीं लेता। क्या कनु के महान बनने में वह लघु और तुच्छ हो गई है?

पर सभी कुछ तो नहीं बदला, बदला है केवल उसका कनु और उसका प्यार। प्रकृति में वही बहार छायी है, आम्र-मंजरियाँ बौराती है, सब ज्यों-की-त्यों हैं। दिन ढले आम के नये बौर अपनी महक का माया-जाल चारों ओर फैला देते हैं और तुम्हारी टेर न होते हुए भी मैं आम्र बौर की महक के जाल में उलझी बेबस यहां चली आती हूं, उसी तरह जैसे तुम्हारे टेरने पर आया करती थी।

प्यारे कनु, नई बात कोई है तो केवल यह है कि मैं तो आती हूं, पर मेरी मांग सूनी रह जाती है और सूनी मांग, थके चरण, तुम सेबिना मिले, असमर्पिता अछूती ज्यों-का-त्यों लौट जाती हूं।

प्यारे कनु, अपने प्रगाढ़ मिलन की उस बेला में आम के बौरों से सजी मांग को तुम्हारी छाती में छिपा कर लजाते हुए और तन्मयता में बेसुध होते-होते जो मैंने प्यार भरी आवाजें सुनी थीं, क्या वे सब झूठी थीं? निरर्थक थी? सारहीन थीं?

विशेष : १. 'कनुप्रिया' के 'इतिहास' खण्ड के 'उसी आम के नीचे' शीर्षक इस गीत में श्री धर्मवीर भारती ने स्मृति-विरह का बड़ा मार्मिक चित्रण किया हैं। इसमें राधा के स्मरण, उपालम्भ, दैन्य, चेतन-अचेतन का द्वन्द्व, विवशता उदासी आदि कितने ही संचारी भावों का सुन्दर चित्रण हुआ है। उंगलियों द्वारा अनजाने ही कनु का प्यारा नाम लिख डालना और सचेत होने पर उसे निस्संकोच मिटा देना मनोवैज्ञानिक भाव-द्वन्द्व का अच्छा उदाहरण है।

२. कवि की अभिव्यजना-शक्ति ने भी इस गद्यगीत को प्रभावी बनाने में योग दिया है। भाषा अत्यन्त सरल और पवाहपूर्ण है। अलंकरण की प्रवृत्ति के अभाव में भी साधारण पदावली कहीं-कहीं लाक्षणिक प्रयोगों से कैसी प्रभावी बन जाती है, यह इस गीत से प्रमाणित हो जाता है। कुछ लाक्षणिक प्रयोग बहुत सुन्दर हैं : "जैसे तुम्हारे महान बनने में क्या मेरा कुछ टूटकर बिखर गया है, कनु!"

अमंगल छाया :

राधा के प्रिय कनु को 'इतिहास' छीन ले गया। राधा उदास, उपेक्षिता, अकेली पड़ जाती है। युद्ध और राजनीति में व्यस्त कृष्ण उसकी कोई सुध नहीं लेते। कनु महान हो गया है, राधा और भी लघु पड़ गई है। तो क्या वे प्यार के दिन, क्या वह ब्रज-बिहार, क्या राधा-कृष्ण का केलि-विलास एक सपना था ?—राधा का मन इन्हीं प्रश्नों से उलझा रह जाता है ।

उधर महाभारत-युद्ध की तैयारियां हो रही हैं। कृष्ण इस भारत-युद्ध के संचालक हैं। युद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना भाग लेने को प्रस्थान कर रही है। राधा के मन की 'अमंगल छाया' उसे इस गद्यगीत में चेतावनी देती है !

घाट से आते हुए..........................सेनाएं गुजर रही हैं।

राधा के आशंकित, दुखित मन की आमंगल छाया उसे चेतावनी देती हुई कहती है : "अब ब्रज-प्रांत की राहों से आना-जाना छोड़ दे, क्योंकि इन राहों से कृष्ण की सेना महाभारत युद्ध के लिए जा रही है। पहले अपने प्रिय कनु को कदम्ब के पेड़ के नीचे ध्यानमग्न अवस्था में देखने के लिए जाती थी और घाट से आते हुए जान-बूझकर उस राह से लौटती थी तथा ध्यानमग्न कनु को देवता समझ प्रणाम करती थी, आज उस राह से लौटने की भूल भी न करना। बावरी राधा ! क्या तू नहीं समझ पा रही कि ये उजड़े हुए कुंज, रौंदी हुई बेलें, आकाश पर फैली हुई पाँवों की धूल इस बात का पता दे रही हैं कि कृष्ण की अठारह अक्षौहिणी सेनाएं महाभारत युद्ध में भाग लेने को इस राह से जा रही हैं।

हे बावरी राधा ! तू इस राह पर खोई-खोई नजर क्या डाल रही है ! इस राह से हटकर खड़ी हो बावरी ! माना कि तेरा प्यार आहत हुआ है ! पर अपने आहत प्यार को लताकुँज की ओट में छिपा ले। इस पथ के पथिकों को तेरे प्यार से कोई वास्ता नहीं, कोई मतलब नहीं। आज गांव की इस राह से कृष्ण की द्वारिका नगरी की युद्ध के लिए बेचैन सेनाएं गुजर रही हैं।

मान लिया कि कनु.....................पथ से हट जा बावरी !

राधा के मन की 'अमंगल छाया' चेतावनी देती हुई आगे कहती है : माना कि कनु तेरा परम प्रिय है—तेरा सर्वाधिक अपना है, माना कि तू उसके रोम-रोम से परिचित है। ये असंख्य सैनिक तेरे प्रिय कनु के ही हैं—इसी बात से तू निडर बनी मत रह और इस राह से हट जा। तुझे यह भी जान रखना

चाहिए कि ये सैनिक तुझे बिल्कुल नहीं जानते, न तेरा इन्हें पता है, न तेरे प्यार का ! अतः राह से हट जा !

यह आम्रवृक्ष की डाल..................उजाड़ दिया जायेगा ?

राधा के ही मन की 'अमंगल छाया' राधा को कहती है : यह ठीक है कि इस आम्र वृक्ष की डाल के नीचे बैठने से तुझे अपार शांति मिलती है। यह आम्रवृक्ष की डाल कनु को विशेष प्रिय थी। वह इसी डाल के नीचे खड़े होकर अपनी वंशी में बार-बार तेरा नाम भरकर तुझे टेरा करते थे और तेरे न आने पर भी सारी शाम इसके सहारे टिके तुझे टेरते रहते थे।

पर इस आम की डाल से भी तेरा मोह व्यर्थ है ! आज यह आम की डाल भी सदा-सदा के लिए काट दी जायेगी, क्योंकि कृष्ण के सेनापतियों के अत्यन्त तेज गति वाले रथों की आकाश को छू लेने वाली पताकाओं के लहराने में यह डाल बाधा है। आज तेरे प्यार का यह चिह्न भी समाप्त कर दिया जायगा। यही क्यों, यह पथ के किनारे खड़ा छायादार पवित्र अशोक वृक्ष, जो तेरे पद-चाप से अक्सर खिलता रहा है, भी खण्ड-खण्ड हो जायगा। उसे भी सैनिकों के प्रस्थान-मार्ग में बाधक समझकर उखाड़ दिया जायगा। युद्ध की इस परिस्थिति में तो सब साधन सेना और सैनिकों के लिए जुटाए जा रहे हैं। तेरे प्यार के बारे में सोचने की किसे फुर्सत है ? आज यदि ग्रामवासी सेनाओं के स्वागत में द्वार नहीं सजाते तो क्या सारा ग्राम नहीं उजाड़ दिया जायगा ? इस अशोक वृक्ष की टहनियों-पत्तियों से सैनिकों के स्वागतार्थ द्वार बांधे जायंगे। इसलिए राधा बावरी ! तू अपने प्यार को कहीं छिपा ले ! उसका नाम न ले। वह 'इतिहास' की परतों के तले दबा दिया गया है।

दुःख क्यों करती है पगली..........................सेनाएं हों ?

राधा के मन की 'अमंगल छाया' उसे वास्तविकता का भाव कराती हुई कहती है : पगली राधा ! दुख मत कर कि कनु ने तुझे भुला दिया है ! वास्तव में 'इतिहास' ने कनु के वर्तमान को इतना व्यस्त बना दिया है कि उसे विगत सब विस्मृत-सा हो गया है। पर तू चिंता न कर ! क्या हुआ जो कनु के ये युद्ध और राजनीति की व्यस्तता के वर्तमान क्षण तुम्हारे प्रगाढ़ प्रेम के उन व्यतीत क्षणों की कथा से सर्वथा बेखबर हो गए हैं; तू नासमझ बनी इतनी उदास क्यों हो रही है कि इस युद्ध की हलचल और भीड़-भाड़ में तू और तेरा प्यार सर्वथा अजनबी बनकर अकेले छूट गए हैं ! बावरी ! तुझे

तो गर्व करना चाहिए : भला कौन है जिसके महान् प्रिय की अठारह अक्षौहिणी सेनाएं हों ?

विशेष—(१) इन अंतिम पंक्तियों में सारे गीत का दंश सिमट कर प्रकट हो गया है। राधा का मन ग्लानि, दुख, व्यंग्य, उपालंभ, खीझ और आत्म-भर्त्सना से भरा है। 'अमंगल छाया' के माध्यम से कवि ने वस्तुतः राधा की ही मनःस्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। व्यंग्य-शैली का इस गीत में बहुत बढ़िया प्रयोग हुआ है। युद्धोन्माद के प्रति भी वितृष्णा जगाई गई है। कवि भारती ने राधा के वियोगगत उपालंभ के साथ-साथ युद्धोन्माद के प्रति भी सुन्दर व्यंग्य कसे हैं। 'लताकुंज की ओट छिपा ले अपने आहत प्यार को आज इस गांव से द्वारिका की युद्धोन्मत सेनाएं गुजर रही है।' तथा 'यदि ग्रामवासी सेनाओं के स्वागत में तोरण नहीं सजाते तो क्या सारा ग्राम नहीं उजाड़ दिया जायगा ?'—आदि पंक्तियों में व्यंग्य की मधुर चोट है।

एक प्रश्न :

प्रस्तुत गीत में राधा अपने कनु से 'एक प्रश्न' करती है ! वह कृष्ण के वियोग में तड़पती रह जाती है। 'इतिहास' उसके कनु को उससे छीन कर ले जाता है। कनु से प्रगाढ़ प्यार की बात अब उसे सपना-सी प्रतीत होती हैं। उसका कनु महान् हो गया है—इतिहास का प्रसिद्ध पुरुष बन गया है, युद्ध-राजनीति का कर्णधार हो गया है ! उसकी अठारह अक्षौहिणी सेनाएं युद्धोन्माद से चूर हैं। कनु का वर्तमान राधा और उसके प्यार को भूल चुका है। राधा का मन बार-बार तड़प उठता है। वह 'उसी आम के नीचे' कुछ शांति पाती थी, जहां खड़े होकर कृष्ण उसे अपनी बांसुरी की धुन में टेरा करते थे। पर सैनिकों के प्रस्थान-मार्ग में पड़ने के कारण उस आम्र वृक्ष को भी कटवा दिया जाता है। उसके प्यार के चिह्न भी अतीत की कहानी बनकर रह जाते हैं। राधा और उसका प्यार इस दुनिया में सर्वथा अपरिचित, उपेक्षित, उदास और अकेले पड़ जाते हैं। युद्ध और राजनीति की भीड़-भाड़ और व्यस्तता में उसे और उसके प्यार को कौन पूछेगा ?

अच्छा, मेरे महान कनु····················समझ नहीं आता है।

पर रह-रहकर एक प्रश्न राधा के मन में उठता है। वह अपने कनु से पूछना चाहती है : अच्छा, मेरे महान् कनु—इतिहास के प्रसिद्ध कृष्ण, मान लो कि थोड़ी देर के लिए मैं यह मान लूं कि मेरे वे सारे प्रगाढ़ प्रेम के क्षण, वह

गाढ़ समर्पण सब मात्र भावावेश था या रंगीन कोमल कल्पनाएं-मात्र थीं—केवल एक सपना था—रंगीन, निरर्थक किन्तु आकर्षक शब्दों का सपना !

और मान लो कि क्षण भर को मैं यह भी मान लेती हूं कि मेरा प्यार असत्य था, निरर्थक था और तुम्हारा यह पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय क्षमा-दण्ड आदि द्वन्द्वों से युक्त युद्ध सत्य है, सार्थक है क्योंकि यह पाप पर पुण्य की, अधर्म पर धर्म की, अन्याय पर न्याय की विजय का प्रेरक है। इसलिए मैं यह भी मान लेती हूं कि मेरे तुच्छ प्यार की तुलना में तुम्हारा इस महायुद्ध में व्यस्त होना बड़ी बात है, पर तो भी मैं क्या करूं कनु, कुछ बातें हैं, जो मेरी पकड़ से बाहर रह जाती हैं—मेरी समझ में नहीं आतीं।

मैं तो तुम्हारी वही बावरी मित्र हूं जिसे तुमने जितना ज्ञान दिया, उतना ही गांठ बांधे है। तुम्हारी राजनीति, युद्ध-नीति—तुम्हारे इतिहास की न जाने कितनी बातें हैं जो अभी मेरी समझ से परे की हैं। यह युद्ध में भीषण नर-संहार, जय-पराजय—इन सब का कुछ अर्थ मेरी समझ में नहीं आता।

अपनी जमुना में··························समझ नहीं आता है।

उपेक्षिता और विरहिणी राधा अपने कनु से 'एक प्रश्न' करती है। वह यह जानना चाहती है कि सार्थकता किस बात में है। मान लो, उसका वह प्रगाढ़ प्यार, चरम साक्षात्कार के वे क्षण, वह महासमर्पण एक सपना था, कोरी भावुकता थी, कल्पना की कोमल किन्तु अर्थहीन रंगीनी थी, तो क्या कृष्ण का भारत-युद्ध का आयोजन निर्मम जनसंहार की परिस्थिति सार्थक है? क्या कनु का अपने ब्रज-चरित्र को भूलकर 'इतिहास' का हो जाना सार्थक है? राधा कहती है कि आज तक मैंने जो समझ पाई है, वह तो तुम्हारे 'इतिहास' के कई पहलुओं का अर्थ समझने में असमर्थ है।

राधा कहती है : 'प्यारे कनु, जिस जमुना नदी को तुमने कालीय नाग का दमन कर विषमुक्त किया था और जो तुम्हारी क्रीड़ा-स्थली थी; यही क्यों, जिस प्यारी यमुना में मैं घण्टों अपने को निहारा करती थी और मुझे लगता था कि यह यमुना का नीला जल नहीं, श्याम-तन तुम मुझे घेरे हो, उसी यमुना में अब संहारक शस्त्रों से लदी हुई असंख्य नौकाएं पंक्तिबद्ध न जाने रोज-रोज कहां जाती हैं? क्या तुम्हारे भारत-युद्ध में जाती हैं? तो क्या मेरा जमुना में भाव-मग्न होना निरर्थक था और यह युद्ध-नौकाओं का गमन सार्थक है? ज़रा समझा तो दो कनु!

उसी तुम्हारी यमुना की जलधारा में बह-बह कर आते हुए टूटे रथ और छिन्न-भिन्न ध्वजाएं किसकी हैं ? क्या ये संहार और विनाश की परिचायक नहीं हैं ?

ये हारी हुई सेनाएं, ये जीती हुई सेनाएं, आकाश को गुंजा देने वाली युद्ध-ध्वनियां, मार-काट, शस्त्र-अस्त्रों और रणभेरी के भयंकर घोष, मरते हुए सैनिकों के क्रंदन-स्वर, युद्ध से भागकर आने वाले सैनिकों के मुख से सुनी जाती हुई अकल्पनीय दानवी युद्ध-घटनाएं, निर्मम पाशविक नर-संहार — क्या ये सब सार्थक हैं ? प्यारे कनु, जरा बताओ तो सही ! समझाओ तो ! ! युद्ध में पड़ी हुई मुर्दा लाशों पर टूट पड़ने के लिए जो चारों दिशाओं से उड़-उड़कर गीध उत्तर दिशा में युद्धभूमि को जाते हैं, तो क्या तुम ही उन्हें लाशों पर मंडराने को बुलाते हो ? और क्या तुम्हारा यह गीधों को बुलाना वैसा ही है जैसे तुम ब्रज में भटकी हुई गायों को टेरा करते थे ? सार्थकता किसमें है बंधु ! जरा समझाओ तो !

जितनी बुद्धि मैंने अब तक पाई है, तुम्हा सहवास से जितनी समझ मुझे मिली है, उस सबको बटोरने के बाद भी मैं समझती हूं, बहुत-कुछ तुम्हारे इतिहास, तुम्हारे चरित्र, तुम्हारे युद्ध का ऐसा है, जिसका कोई भी अर्थ मुझे समझ नहीं आता !

अर्जुन की तरह..............................फिर क्या है, कनु ?

'कनुप्रिया' के 'इतिहास' खण्ड के 'एक प्रश्न' शीर्षक गद्यगीत में उपेक्षित और विरहिणी राधा अपने प्रिय कनु से पूछना चाहती है कि सत्यता और सार्थकता किस बात में है। यदि उसका वह प्रगाढ़ प्यार, चरम साक्षात्कार के वे क्षण अयथार्थ, अस्वाभाविक, निरर्थक, काल्पनिक सपना-मात्र ही मान लिये जायं, तो क्या यह हिंसापूर्ण युद्ध, जिसमें असीम नर-संहार हो रहा है, सार्थक है ? उचित है ?

गीत की इन अंतिम पंक्तियों में राधा कहती है, "तुम्हारे इतिहास का कितना-कुछ ऐसा है, जो मेरी समझ से बाहर है। मैं नहीं समझ पाती कि अपार नर-भक्षी यह तुम्हारा भारत-युद्ध कैसे सार्थक है, कैसे न्यायोचित है ! कनु प्यारे, जरा मुझे समझा तो दो। देखो, तुमने संशय में पड़े अर्जुन को गीता का उपदेश देकर समझा दिया था। उसी प्रकार मुझे भी कभी समझा क्यों नहीं देते कि सार्थकता किस बात में है। मान लिया कि मेरे प्रगाढ़ प्रेम,

मेरी तन्मयता के गहरे क्षण रंगीन सपना थे, कल्पना से रंगे हुए थे, आकर्षक किन्तु निरर्थक शब्द-ध्वनियां-मात्र थे—तो मुझे यह तो समझा दो कि सार्थक क्या है ? कनु, क्या टूट पड़ने वाले गीध, युद्ध की भयंकर मार-काट, करुण-क्रंदन—क्या इनमें सार्थकता है ? जरा बताओ तो, समझाओ तो !"

विशेष : 'एक प्रश्न' शीर्षक इस गद्यगीत में भी श्री धर्मवीर भारती ने व्यंग्य शैली का सुन्दर प्रयोग किया है। राधा का कनु से यह प्रश्न कि सार्थकता क्या है, अपने में एक बड़ा व्यंग्य छिपाये है। क्या तुम्हीं लाशों पर टूट पड़ने वाले गीधों को बुलाते हो ? ("जैसे बुलाते थे भटकी हुई गायों को")—एक ऐसा सार्थक व्यंग्य है जिसकी अर्थ-ध्वनि बहुत दूर तक जाती है। इसी प्रकार—"अर्जुन की तरह कभी मुझे भी समझा दो सार्थकता है क्या बंधु ?" —इन पंक्तियों में भी व्यंग्य छिपा है।

शब्द : अर्थहीन :

पर इस..नहीं निकलते।

'कनुप्रिया' के 'इतिहास खण्ड' के 'एक प्रश्न' शीर्षक गद्य-गीत में राधा ने अपने कनु से पूछा था कि 'सार्थक क्या है ?' यदि मेरा प्रगाढ़ प्यार, चरम साक्षात्कार के मेरे क्षण निरर्थक थे, कोरी भावुकता-भरे थे, रंगीन सपना थे, तो क्या यह भीषण नर-संहार, यह युद्ध की विभीषिका सार्थक है ? राधा ने व्यंग्य-शैली में कनु से आग्रह किया था कि जैसे द्विधा में डूबे अर्जुन को सार्थकता समझाकर युद्ध के लिए तैयार कर लिया था, वैसे ही कभी मुझे भी सार्थकता समझा दो न !

प्रस्तुत गद्य-गीत में राधा उसी संदर्भ में कनु के प्रति कहती है : "पर तुम अपने न्याय, कर्म, कर्त्तव्य वाले युद्ध की सार्थकता मुझे समझाओगे कैसे ? अर्जुन की भूमिका मैं अदा नहीं कर सकती ! मेरे लिए तुम्हारे 'इतिहास' के सब शब्द पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म, दायित्व, निर्णय आदि—अर्थहीन हैं। इन की सार्थकता तभी है, जब प्रगाढ़ प्यार के क्षणों में मेरे पास बैठकर तुम मेरे रूखे बालों में उंगलियां फेरते हुए अपने कांपते होठों से इन्हें निकालो। प्यारे कनु, मैं तो तुम्हारी दिवानी हूं। तुम्हारे उपदेशों, तुम्हारी न्याय-नीति की बातो की सार्थकता मैं तभी समझ सकती हूं, जब वे शब्द तुम्हारे मुखारिन्द से प्रत्यक्ष सुनूं। अतः सब बातों की सार्थकता मेरे लिए यही है कि तुम आकर दर्शन दो और मिलो।

शब्द, शब्द, शब्द..........................तुम्हारे जादू-भरे होठ !

'शब्द : अर्थहीन' शीर्षक गद्यगीत में राधा कनु के 'इतिहास' चक्र पर व्यंग्य करती हुई कहती है : "न्याय, धर्म, नीति आदि शब्दों की सार्थकता जताने वाला तुम्हारा युद्ध-निर्णय चाहे अर्जुन को सार्थक प्रतीत हुआ हो, पर मुझे उसमें कोई सार्थकता नजर नहीं आती । मेरे लिए 'धर्म', 'कर्म', 'स्वधर्म', 'निर्णय', 'दायित्व' आदि शब्द सर्वथा निरर्थक हैं। मैंने भी गली-गली में सुना है कि तुमने इन शब्दों की सार्थकता बताकर मोहग्रस्त अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार कर लिया है, पर प्यारे कनु, मुझे तो इन शब्दों में कोई सार-तत्त्व नजर नहीं आता । अर्जुन को उपदेश देते हुए तुम्हारे मुख से निकले शब्द तो मेरे लिए कोई सार्थकता नहीं रखते, हां, मैं इस सूचना से कि तुम्हारे मुखारबिन्द से ये शब्द निकले हैं, कल्पना में अवश्य खो गई हूं और कई बार गली-बाज़ार में सूचना मिलते ही क्षण भर को ठिठक कर तुम्हारे उन अधरों की मधुर मुद्रा अपनी कल्पना में उतारने लती हूं जिसमें तुमने ये शब्द पहली बार कहे होंगे !

तुम्हारी उस छवि की कल्पना में मैं डूब जाती हूं । तुम्हारा श्यामल-कोमल लहराता तन, कुछ मुड़ी हुई टेढ़ी शंख-सी गर्दन, उठी हुई चंदन-जैसी शीतल-कोमल बाहें, तुम्हारी अपने में खोई-सी अधखुली दृष्टि और शब्द निकालते हुए धीरे-धीरे हिलते तुम्हारे जादू-भरे होंठ—सब कल्पना में घूम जाते हैं। मेरे लिए ये ही सार्थक हैं, शब्दों की कोई सार्थकता नहीं ।

मैं कल्पना करती हूं..........................राधन्, राधन्, राधन् !

'इतिहास' खण्ड के 'शब्द : अर्थहीन' शीर्षक गद्यगीत में राधा अपने कनु से कहती है कि न्याय, धर्म, पाप-पुण्य, कर्त्तव्य आदि कनु के उपदेशात्मक शब्दों की उसके लिए कोई सार्थकता नहीं । राधा के लिए तो केवल कनु की रूप-रूप-छवि ही सार्थक है जिसकी कल्पना वह अपने मन में करती रहती है । कनु की कल्पना करती हुई राधा कहती है : "प्यारे कनु, मैं अपनी कल्पना में डूबी अनुभव करती हूं कि अर्जुन की जगह मैं तुम्हारा उपदेश सुन रही हूं और मेरे मन में युद्ध के बारे मेंद्विधा और मोह उत्पन्न हो गया है। मैं नहीं जानती कि युद्ध कैसा है और मैं किसके पक्ष में हूं, और युद्ध का कारण क्या है, किसके समक्ष क्या समस्या है ? लेकिन मेरे मन में मोह उत्पन्न हो गया है, क्योंकि उपदेशक-रूप में तुम्हारी रूप-छवि मुझे बहुत भाती है, तुम्हारे-द्वारा समझाना मुझे बहुत अच्छा लगता है ! मैं कल्पना करती हूं, दोनों ओर की सेनाएं स्तब्ध और

हैरान खड़ी हैं, इतिहास की घटनाएं कुछ देर के लिए रुक गई हैं और तुम अपने मधुर होठों को धीरे-धीरे हिलाते हुए मुझे समझा रहे हो। फूलों की तरह शब्द तुम्हारे मुखारविन्द से झड़ रहे हैं···कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व और ऐसे ही न जाने कितने शब्द ! पर सब मेरे लिए सर्वथा निरर्थक हैं। मैं इन सब शब्दों से बेखबर एकटक केवल तुम्हें देख रही हूं, तुम्हारी रूप-माधुरी को पी रही हूं। हर शब्द को अंजलि बनाकर बूंद-बूंद तुम्हारा रूप पी रही हूं। और तुम्हारे दमकते हुए मुख और दहकते हुए शरीर का तेज मेरे जिस्म के एक-एक बुझे हुए भाव-संवेदन को भड़का रहा है। जैसे तुम्हारे जादू-भरे होठों से रजनी गंधा के फूलों की तरह टप्-टप् शब्द झरे जा रहे हैं···कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व···न जाने कितने शब्द निकल रहे हैं, पर मुझ तक आते-आते जैसे ध्वनियाँ बदल लेते हैं और मुझे केवल सुनाई पड़ रहा है राधन्, राधन्, राधन् ! मुझे लग रहा है जैसे तुम केवल मेरा नाम टेर रहे हो, उसी प्रकार, जैसे ब्रज में बांसुरी की धुन में टेरा करते थे। मैं अपने उसी प्रगाढ़ प्यार की कल्पनाओं में खो जाती हूं।"

शब्द, शब्द, शब्द·························कैसे समझाओगे, कनु ?

'शब्द : अर्थहीन' शीर्षक गद्यगीत में राधा कहती है कि मेरे लिए तुम्हारे बिना, तुम्हारे धर्मोपदेश के शब्दों—'कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व' आदि की कोई सार्थकता नहीं। उसका कथन है कि धर्म, कर्त्तव्य, कर्म आदि शब्दों का अर्जुन के लिए चाहे जितना महत्त्व हो, पर उसके लिए ये शब्द अर्थहीन हैं। उसकी तो एकमात्र सार्थकता कनु है और कनु के लिए भी इन सब शब्दों का एकमात्र अर्थ—एकमात्र ध्वनि राधा है, राधन् है, उसके सिवा कुछ नहीं।

राधा अपने प्रिय कनु के प्रति कहती है : "प्यारे कनु, कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व···आदि कितने ही शब्द तुम्हारे मुख से रजनीगंधा के फूलों की तरह झरते हैं। शब्द, शब्द, शब्द···एक के बाद एक न जाने कितने हैं तुम्हारे शब्द—अगणित, संख्यातीत ! पर बंधु, उन सब का केवल एक अर्थ है : और वह हूँ केवल मैं, मैं, राधा ! सब शब्दों की एक ही ध्वनि है—राधन्, राधन्, राधन् !

फिर भला उन उपदेश के शब्दों से, जिनका अर्थ मैं हूँ, मुझी को कर्म, स्वधर्म, पाप-पुण्य, धर्माधर्म आदि शब्दों और राजनीति और युद्ध की घटनाओं से भरा अपना इतिहास कैसे समझाओगे ?"

विशेष : १. कृष्ण-काव्य के भ्रमरगीत-प्रसंग में तथा 'रासपंचाध्यायी' आदि प्रकरणों में जिस प्रकार गोपियां बार-बार उद्धव आदि से कहती हैं कि कर्म-धर्म की बातें हमारे सामने निरर्थक हैं, क्योंकि हमारे तो कर्म-धर्म सब कृष्ण हैं, उसी प्रकार राधा कर्म-धर्म आदि शब्दों की अर्थहीनता जताती हुई कहती है कि मेरे लिए तो कनु ही एकमात्र सार्थकता है। नंददास की गोपियां 'रास-पंचाध्यायी' में कृष्ण को यही कहती हैं। जब कृष्ण के आवाहन पर गोपियां अर्द्ध-शर्वरी में अपने घरों से निकलकर कृष्ण के पास आ जाती हैं तो कृष्ण उनकी परीक्षा लेने के लिए बांकेपन से उन्हें धर्म-कर्म का उपदेश देते हुए लौट जाने को कहते हैं, तब गोपियां प्रत्युत्तर में बड़े मार्मिक शब्दों-द्वारा कहती हैं, "वाह ! नियम, धर्म, कर्म, जप-तप—ये सब साधन किसी फल की प्राप्ति के ही लिए तो होते हैं। और जब तुम्हें पाना ही हमारा लक्ष्य है, तुम्हीं हमारे फल हो, तो तुम्हें छोड़कर हम कर्म, धर्म, नियम को क्यों अपनाये ? यह तो कहीं नहीं सुना गया कि फल ही साधनों को बताने लगे ! —

नेम धर्म जप तप ये सब कोउ फलहिं बतावै ।

यह कहुँ नाहिन सुनी जु फल फिरि धरम सिखावै ।।

—रासपंचाध्यायी

राधा को कृष्ण की आल्हादकारिणी शक्ति माना गया है। अतः कृष्ण के लिए भी एकमात्र फल—एकमात्र लक्ष्य राधा ही है। इसीसे राधा कहती है कि तुम्हारे सब शब्दों का एक ही अर्थ हैं : और वह हूँ मैं, केवल मैं !

इस प्रकार इस गद्यगीत में राधा के अटूट प्रेम की दार्शनिक व्याख्या की गई है जो बड़ी मार्मिक है।

२. व्यंग्यशैली का पुट यहां भी विद्यमान है। "मैंने भी गली-गली सुने हैं ये शब्द", "फिर उन शब्दों से मुझी को इतिहास कैसे समझाओगे ?" आदि उक्तियों में मधुर व्यंग्य का पुट है।

३. इस गद्यगीत में अभिव्यक्ति के कुछ कलात्मक प्रयोग भी हैं। लाक्षणिकता से युक्त सुन्दर रूपक-प्रयोग इन पंक्तियों में है—

हर शब्द को अँजुरी बनाकर
बूँद-बूँद तुम्हें पी रही हूँ

उपमा का सुन्दर प्रयोग इन पंक्तियों में दृष्टव्य है :

और तुम्हारे जादू-भरे होठों से
रजनीगँधा के फूलों की तरह टप्-टप् शब्द झर रहे हैं

समुद्र-स्वप्न :

कृष्ण के 'इतिहास' की समाप्ति एक विक्षोभ के रूप में होती है। भारत-युद्ध का परिणाम एक विषाद की रेखा छोड़ जाता है। अनन्त संघर्ष, राज-नीति, युद्ध से तंग आकर कृष्ण हताश और निराश एकांत ग्रहण करते हैं। 'इतिहास' की इसी परिणति को श्री धर्मवीर भारती ने राधा के 'समुद्र-स्वप्न' के रूप में प्रस्तुत किया है।

जिसकी शेष शय्या पर··························कभी युद्धरत।

विष्णु शांत समुद्र में शेष-शायी माने जाते हैं और लक्ष्मी उनके साथ रहती हैं। यहाँ कवि भारती ने कनु को विष्णु का अवतार मानकर शेष-शायी कहा है। साथ ही समुद्र को जगत् का प्रतीक बनाया है। निष्फल सीपियां असहाय प्राणियों की प्रतीक हैं। राधा इसी प्रतीकात्मक शैली में अपने प्रिय कनु को अपना सपना बनाती हुई कहती है : "प्यारे कनु, जिस समुद्र में शेष-नाग की शय्या पर मैंने तुम्हारे साथ युगों-युगों तक क्रीड़ा की है, आज उस समुद्र को मैंने सपने में देखा है !

उस समुद्र की नीली लहरों के नीले पर्दे में जहां सिंदूरी गुलाब-जैसा सूरज का प्रतिबिम्ब चमकता था अर्थात् जहां जीवन की सुखदायक सुनहरी किरणें छाई रहती थीं—सुख और शांति का साम्राज्य था, वहाँ अब सैकड़ों-सैकड़ों प्राणी निष्फल, असहाय और निराश छटपटा रहे हैं और तुम मौन हो, तटस्थ-से बने देख रहे हो।

प्यारे कनु, मैंने देखा कि असंख्य क्रुद्ध और विक्रांत भाव-उर्मियां झाग का सिर-टोप पहने, काई का कवच धारण किये और मरी हुई मछलियों के धनुष हाथों में लिए युद्ध के लिए बेचैन हैं। अर्थात् कौरव-पाँडव आदि अपने-अपने शस्त्रास्त्र सजाकर युद्ध कराने को आतुर हैं और तुम कभी उनके बीच मध्यस्थ बनकर सुलह-समझौता करने का प्रयत्न करते हो, कभी अपने को तटस्थ ज़ाहिर करते हो और कभी युद्ध में लगे दीखते हो।

और मैंने देखा··························क्षणिक सुख लेने के लिए।

'इतिहास' के अंतिम गद्यगीत 'समुद्र-स्वप्न' में राधा अपने सपने को बताती हुई अपने कनु के प्रति कहती है—"प्यारे कनु, मैंने सपने में देखा कि दुनिया में युद्ध का वातावरण फैला हुआ है और तुम कभी कौरवों-पांडवों के बीच मध्यस्थ बनते दिखाई दे रहे हो, कभी अपने को तटस्थ जताते हो और कभी युद्ध-रत।

राधा कहती है, "अनन्त संघर्ष और युद्ध में रत रहने के बाद अंत में तुम थक-कर, कौरवों से ही नहीं, पांडवों से भी—सबसे खिन्न होकर, उदासीन, चकित और कुछ-कुछ आहत हुए मेरे कंधों से टिककर बैठ गये हो। सब तरह के संघर्षों के बाद अंत में तुम्हें मेरे प्यार की छाया ही शीतलता पहुंचाती है। अनन्त संघर्षों के बाद अंततः तुम मेरे पास आकर बैठ जाते हो और तुम्हारी शिथिल भटकती उंगलियां अपने अनमनेपन में तट की गीली बालू पर कुछ-कुछ लिख देती हैं : अपनी किसी उपलब्धि को जताने की बात नहीं लिखतीं, अपितु चिरकाल तक संघर्ष से तपते रहने के बाद अब केवल ठण्डे जल में डुबो कर क्षणिक सुख पाने के लिए ही उंगलियां बालू पर कुछ-कुछ लिखने का उपक्रम करती हैं।

आज उस समुद्र को..............................समाधि है।

राधा कनु को अपना सपनां बताती है : "आज उस समुद्र को मैंने सपने में देखा, जहां शेषशय्या पर मैंने तुम्हारे साथ युगों-युगों तक क्रीड़ा की है। प्यारे कनु, मैंने देखा कि इस संसार-सागर में आज विक्षुब्ध सर्पों-सी विष-भरी लहरों की झागें उत्पन्न हो गई थीं, निर्जीव सूर्य नज़र आ रहा था, असहाय और बेबस प्राणी थे, मरी हुई मछलियाँ दीख रही थीं। पर शनैः-शनैः समुद्र की लहरें नियंत्रित होती जा रही थीं, युद्ध, संघर्ष उपशमित हो रहे थे। और ऐसे में तुम फिर, अपनी आदत के अनुसार, तट पर बांह उठा-उठाकर कुछ उपदेश के शब्द कह रहे थे। पर अब तुम्हारी बात कोई नहीं सुन रहा था, कोई नहीं सुन रहा था!

अंत में तुम हार-थककर लौट पड़े और मेरे वक्ष की गहराई में अपना चौड़ा माथा रखकर गहरी नींद सो गये! और तब मेरे वक्ष की गहराई मानो समुद्र में बहता, बड़ा-सा ताज़ा, कोमल, अछूता गुलाबी वटपत्र बन गया है जिस पर तुम छोटे-से बालक की तरह लहरों के पालने में झूलते हुए महाप्रलय के बाद सो रहे थे!

मैंने देखा कि तुम सो रहे थे और नींद में तुम्हारे होठ पूर्व-अभ्यास से धीरे-धीरे हिले और शब्द निकले : 'स्वधर्म!...आखिर मेरे लिए स्वधर्म क्या है?" तुम अपने ही शब्दों के बारे में तर्क-वितर्क करने लगे। पर लहरों ने तुम्हें थपकी देकर सुला दिया, "सो जाओ योगिराज कृष्ण...सो जाओ ...यह निद्रा ही योगियों की समाधि है। इसी में महासुख है।"

और तुम सो गए। पर थोड़ी देर बाद फिर नींद में तुम्हारे होंठ धीरे-धीरे हिलने लगे और शब्द निकले, "न्याय-अन्याय, सदसद्, विवेक-अविवेक—इनकी कसौटी क्या है ? आखिर कसौटी क्या है ? तुम अपने ही विचारों पर तर्क-वितर्क कर रहे थे ! और लहरों ने फिर तुम्हें थपकी देकर सुला दिया, "सो जाओ योगेश्वर···निद्रा महासमाधि है। जागरण सपना है, धोखा है!" और सचमुच तुम सो गए।

मैंने फिर देखा कि तुम्हारे माथे पर मानसिक तनाव के कारण पसीना झलक आया है और फिर तुम्हारे होंठ कांपने लगे हैं और तुम चौंककर जाग उठे हो। तुम खिन्न हो कि तुम्हें न्याय-अन्याय, सदसद्, विवेक-अविवेक का निर्णय करने की कोई कसौटी नहीं मिलती। तुम यह निर्णय करने में असमर्थ प्रतीत हो रहे हो कि न्याय का पक्ष पांडवों का है या कौरवों का और कि तुम्हारा धर्म क्या है, तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है, तुम्हें किसका पक्ष ग्रहण करना चाहिए ! और तुम जूए के पांसे की तरह अपना निर्णय भी फेंक देते हो : जो मेरे पैताने है वह स्वधर्म है, मैं व्यक्तिगत रूप से उसका पक्ष लूंगा और जो मेरे सिरहाने है, वह अधर्म है ! ···और तुम्हारे मुख से यह सुनते ही, जो भाव-लहरें कुछ क्षणों के लिए नियंत्रित होने लगी थीं, वे पुनः घायल सर्पों-सी फुंकारने लगीं और पुनः प्रलय का-सा दृश्य उत्पन्न हो गया। युद्ध का ताण्डव नृत्य आरंभ हो गया।

कुछ देर के बाद तुम फिर उदास होकर और अपने ही निर्णय के औचित्य पर विस्मित हुए इस संसार-सागर के किनारे बैठ जाते हो और दुःखी चितवन से शून्य में देखते हुए कहते हो : 'यदि कहीं उस रोज मेरे पैताने दुर्योधन बैठा होता तो···मुझे विवश हो उसका पक्ष लेना पड़ता ! आह ! कितनी विसंगति थी मेरे निर्णय में !' और तुम्हारे मुंह से कराह के रूप में निकलता है : 'मैं तुम्हें क्या उपदेश दे सकता हूं, ओ अर्जुन, मैं स्वयं इस विराट् संसार-प्रपंच के किनारे एक भोला बालक हूं।' और इस तरह तुम अर्द्ध-निद्रा की अवस्था में आत्मभर्त्सना करते प्रतीत हो रहे थे।

आज मैंने समुद्र को ·······तटस्थ हो और उदास। (पृ० ७७-७८)

'समुद्र-स्वप्न' में राधा अपने सपने को सुनाती हुई कहती है : "कनु प्यारे आज मैंने उस समुद्र को सपने में देखा, जहां शेष-शय्या पर मैंने तुम्हारे साथ युग-युगों तक क्रीड़ा की है। आज उस समुद्र के विक्षुब्ध वातावरण से दुःखी

तुम उदास और हताश उसके किनारे पर आ बैठे हो ! तट पर जल-देवदारु वृक्षों में से बार-बार ध्वनि प्रकट करती हुई हवा के निरर्थक गूंगे कंठ के झकोरे बह रहे हैं। बालू रेत पर अपने पदचिह्न बनाने के प्रयास में दुःखी हुआ लंगड़ा और बैसाखियों पर चलता हुआ इतिहास अर्थात् तुम्हारा बालू की रेत पर अपना इतिहास अंकित करने का निष्फल प्रयास, और मैंने देखा कि समुद्र की लहरों में तुम्हारे उपदेश के श्लोकों से प्रेरित किया हुआ अर्जुन का गांडीव गले हुए सिवार (काई)-सा पड़ा है—निष्फल, निर्जीव ! और तुम अब संघर्ष से सर्वथा तटस्थ और उदास हो समुद्र के किनारे आ बैठे हो !

समुद्र के किनारे .... त्याग दिया है। (पृ०७८)

राधा अपनी कल्पना में खोई अपना 'समुद्र-स्वप्न' सुनाती है : "प्यारे कनु, समुद्र के किनारे मुझे नारियल के कुँज दिखाई दे रहे हैं और तुम उदास और हताश एक बूढ़े पीपल के पेड़ के नीचे चुपचाप बैठे हो—मौन, शांत, विरक्त और तटस्थ ! और मैंने देखा कि जैसे पहली बार तुम्हारे चिर युवा मुख पर थकान छाई हुई है।

"प्यारे कनु, तुम उदास और खिन्न हो और चारों ओर दुःखी नज़र दौड़ा कर और एक ठण्डी और गहरी सांस खींचकर तुमने असफल इतिहास को फटे हुए पुराने कपड़ों की तरह त्याग दिया है। इतिहास पीछे छूट गया है। जिस इतिहास के निर्माण में तुमने इतना भीषण युद्ध रचा, वह इतिहास निष्फल जा रहा था !"

और इस क्षण..................मेरे लिए भटकती हुई। (पृ०७८-७९)

'कनुप्रिया' के 'इतिहास' खण्ड के अंतिम गद्यगीत 'समुद्र-स्वप्न' में राधा अपना सपना सुनाती हुई कहती है, "प्यारे कनु, आज मैंने उस समुद्र को सपने में देखा जहां शेष-शय्या पर तुम्हारे साथ मैंने युग-युगों तक क्रीड़ा की है। आज उस समुद्र का वातावरण शांत नहीं था, विक्षुब्ध था ! संघर्षों के बाद तुम अपने इतिहास-निर्माण के प्रयास में असफल और खिन्न हुए उस समुद्र के किनारे उदास बैठे हो। तुमने जीर्णवसन की तरह अपने ऊपर ओढ़े हुए इतिहास को त्याग दिया है। और इस क्षण केवल अपने में डूबे-खोए हुए, दर्द से पके हुए तुम्हें बहुत दिनों के बाद मेरी याद आती है।

प्यारे कनु, मेरी याद आते ही जैसे समस्त वातावरण फिर बदल गया। कांपती हुई दीप-शिखा-जैसे पीपल के पत्ते एक-एक कर बुझ गए और समुद्र की

लहरें जो युद्ध की विषमता से झाग उगलती थीं, अब तुम्हारी फैली हुई सांवरी शिथिल बांहें प्रतीत हो रही थीं और समुद्र में भटकती हुई सीपियाँ तुम्हारे कांपते अधर नज़र आ रहे थे।

और मुझे लगा कि अब इस समय तुम केवल एक भर्राई हुई, थकी हुई, पकी हुई एक गहरी पुकार हो···सब त्यागकर—इतिहास, युद्ध, संघर्ष, मध्यस्थता, तटस्थता, युद्धरतता—सबको त्यागकर केवल मेरे लिए भटकती हुई एक पुकार-मात्र हो।

विशेष : १. 'इतिहास' खण्ड के इस अंतिम गीत में कवि ने कृष्ण के निष्फल संघर्ष और हताश दशा का उपेक्षिता राधा के मुख से मार्मिक वर्णन कराया है। सब प्रकार के जीवन-संघर्षों से ऊबकर, तंग आकर कृष्ण को अंततः राधा के वक्ष में ही शांति मिलती है, राधा के प्रेम में ही शीतल छाया का अनुभव होता है।

२. इस गद्यगीत में प्रतीक शैली का प्रयोग किया गया है। समुद्र एक ओर पौराणिक क्षीर सागर का, दूसरी ओर संघर्षमय संसार का प्रतीक है। लहरें भावनाओं और विचारों की प्रतीक हैं। निष्फल सीपियां असहाय और पीड़ित प्राणियों की प्रतीक हैं।

३. कुछ उपमा-रूपक-प्रयोग भी अच्छे बन पड़े हैं। 'सिंदूरी गुलाब-जैसा सूरज', 'असफल इतिहास को जीर्ण वसन की भांति त्याग दिया है', 'कांपती हुई दीप-लौ-जैसे पीपल के पत्ते', 'गांडीव गले सिवार-सा उतरा आया है', 'जूए के पांसे की तरह तुम निर्णय को फेंक देते हो।' आदि सुन्दर उपमा-प्रयोग हैं, और 'लहरों के पालने में', 'फेन का शिरस्त्राण पहने', 'सिवार का कवच धारण किये', 'निर्जीव मछलियों के धनुष लिये', आदि में व्यस्त रूपक का सुन्दर प्रयोग है।

४. इस गद्यगीत में भी कवि ने मार्मिक व्यंग्य-शैली का प्रयोग किया है। बुड़बुड़ाते कनु को थपकी देकर सुलाती हुई लहरों का वर्णन व्यंग्य शैली का उत्कृष्ट नमूना है। ये पंक्तियां विशेष द्रष्टव्य हैं :

"सो जाओ योगिराज······सो जाओ····· निद्रा
समाधि है!"

× × ×

"सो जाओ योगेश्वर······जागरण स्वप्न है,
छलना है, मिथ्या है!

× × ×

और जूए के पांसे की तरह तुम निर्णय को फेंक देते हो
जो मेरे पैंताने हैं वह स्वधर्म
जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म......
इत्यादि।

समापन

क्या तुमने ....मुझे फिर आना था ! (पृ० ८३)

'समापन' के इस अंतिम गद्यगीत में राधा अपने कनु की पुकार पर प्रतीक्षारत होती है। उसे विश्वास था कि उसका कनु चाहे कहीं कितना ही भटक ले, भरम ले, पर अंततः उसे राधा के वक्ष में शांति मिलेगी। इतिहास-निर्माण में अकेला भटकने के बाद आखिर कनु राधा को पुकारता है और राधा भी सब कुछ छोड़-छाड़ उसके आवाहन पर पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर कनु की प्रतीक्षा में अडिग खड़ी हो जाती है।

राधा अपने प्रिय कनु के प्रति कहती है: "प्यारे कनु, क्या तुमने अपनी हताश और उदास दशा में उस घड़ी मुझे पुकारा था? मैं तुम्हारी पुकार सुनकर, सब छोड़-छाड़ तुम्हें मिलने आ गई हूं।"

"प्यारे कनु, मैं इसलिए महामिलन के उन क्षणों में तुम में (समुद्र में बूंद की तरह) विलीन नहीं हुई थी और इसीलिए मैंने तुम्हारे गोलोक—तुम्हारे परम-धाम का नित्य रास, जो काल-अवधि के परे निरंतर चलता रहता है, अस्वीकार कर दिया था, क्योंकि मैं जानती थी कि तुम मुझे फिर पुकारोगे और मुझे फिर आना होगा! कनु, तुमने पुकारा और मैं चली आई हूं!"

तुमने मुझे पुकारा था न ....अर्थहीन शब्द ! (पृ०८३-८४)

कनु बार-बार राधा को पुकारता है और जन्मजन्मान्तर तक, युग-युगों तक राधा उसकी पुकार पर चली आती है। इतिहास-निर्माण की कटु अनुभूति से खिन्न और उदास होकर जब कनु राधा को पुकारता है, राधा को याद करता है, तो राधा सब-कुछ पा जाती है। वह अपने कनु की पुकार पर पुनः चली आती है और 'पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर' खड़ी होकर अपने कनु की प्रतीक्षा करती है। उसे खेद है तो इसी बात का कि कनु ने उसे अपने इतिहास में क्यों गूंथना नहीं चाहा।

'कनुप्रिया' के अंतिम गद्यगीत 'समापन' में राधा अपने कनु के प्रति कहती है: "प्यारे कनु, तुमने मुझे पुकारा था न! लो, मैं आ गई हूं! और जीवन

की अनन्त—सीमाहीन, कालावधिहीन पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर, जहां हर किसी के भटकने का डर रहता है, आकर खड़ी हो गई हूं, और तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूं। मैं इस बार इसलिए भी विशेष सतर्क हूं कि कहीं इस बार भी इतिहास-निर्माण करते समय तुम अकेले न पड़ जाओ, मेरे बिना निष्फल और हताश न हो जाओ।

"प्यारे कनु, मेरे प्यार ! ज़रा बताओ तो सही कि अपनी जिस अंतरंग सखी को चरम साक्षात्कार के क्षणों में—प्रगाढ़ केलिक्रीड़ा के समय तुमने अपनी बांहों में गूंथा था, उसे अपने इतिहास में गूंथने से क्यों कतरा गए ? क्या तुम महान् होकर मुझे अयोग्य समझने लगे थे ? और क्या इसीसे मुझे अपने 'इतिहास' में सम्मिलित नहीं किया ? पर बिना मेरे भला तुम्हारे इतिहास की क्या सार्थकता सिद्ध होती ! तुम्हारे इतिहास का मेरे बिना कोई अर्थ कैसे निकल आता ! कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व आदि सब शब्द मुझ राधा के बिना निरर्थक और रक्त के प्यासे युद्ध के द्योतक थे। कर्म, स्वधर्म आदि तुम्हारे उपदेशात्मक शब्दों ने ही तो अठारह अक्षोहिणी सेना के रक्त के प्यासे युद्ध का आवाहन किया था !"

सुनो मेरे प्यार !............अडिग खड़ी हूं, कनु मेरे ! (पृ० ८४)

'कनुप्रिया' के 'समापन' गद्यगीत की इन पंक्तियों में राधा अपने प्रिय कनु के प्रति कहती है : "मेरे प्यारे कनु, सुनो मैं आ गई हूं। अपने निरर्थक और निष्फल इतिहास से हताश और उदास होकर तुमने अंततः मुझे पुनः पुकारा, फिर याद किया ! तुम्हें अब मेरी जरूरत महसूस हुई। लो, मैं सब छोड़-छाड़कर तुम्हारे आवाहन पर फिर आ गई हूं। मैं इस बार विशेष रूप से इसलिए आई हूं ताकि तुम्हारे इतिहास-निर्माण की कथा में मेरा भी योग हो, ताकि इस बार कोई यह न कह सके कि तुम्हारी अंतरंग केलि-सखी मैं केवल तुम्हारे सांवरे तन की मुग्धा बनकर रह गई—केवल किशोरावस्था के नशीले प्रेम-संगीत की लय बनकर रह गई !

"प्रिय कनु, मैं अब तुम्हारे इतिहास का भी अंग बनने आई हूं। अतः मेरे प्यारे ! मेरी वेणी में प्यार से अग्निपुष्प गूंथने वाली अपनी उंगलियों को अब मेरे साथ तुम्हारे इतिहास में अर्थ गूंथने दो !

"प्यारे, तुमने मुझे बुलाया था न ! लो, मैं आ गई हूं और जीवन-

पथ की पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर, जहां अनेक भटक जाते हैं, तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ी हूं—अडिग खड़ी हूं !

विशेष : १. इस गद्यगीत में कवि भारती ने भक्ति-दर्शन के अनुसार सायुज्य मुक्ति के स्थान पर सामीप्य भक्ति का प्रतिपादन राधा के कथन द्वारा किया है। राधा कहती है कि मैं तुम में बूंद की तरह विलीन इसलिए नहीं हुई, क्योंकि मुझे फिर आना था। वैष्णव-भक्तों ने भी मुक्ति नहीं, भक्ति ही चाही है।

२. कुछ लाक्षणिक प्रयोग अच्छे हैं। 'उसे इतिहास में गूंथने से हिचक क्यों गए ?' 'सांवरे तन के नशीले संगीत की लय बन कर रह गई', 'तुम्हारी उंगलियां अब इतिहास में अर्थ क्यों नहीं गूंथती ?' आदि सुन्दर लाक्षणिक प्रयोग हैं।